अप्रैल - सितंबर 2010

वर्ष :42 अंक : 2/3

प्रतियोगिता विशेषांक

वैज्ञानिक

वैज्ञानिक

हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद की पत्रिका

भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र के सौजन्य से प्रकाशित

भा.प.अ. केंद्र द्वारा विकसित भाभाट्रान-II टेलीथेरपी इकाई

: मूल्य :
20 रु.

डॉ. होमी भाभा हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता- २०११

हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद एवं राजभाषा कार्यान्वयन समिति (भा.प.अ. केंद्र) के संयुक्त तत्वावधान में आयोजित **हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता** 2011 हेतु प्रविष्टियां आमंत्रित हैं। लेख में किसी भी वैज्ञानिक विषय पर मौलिक एवं आधुनिक जानकारी होनी चाहिए। लेख का अप्रकाशित होना अनिवार्य है। मूल्यांकन में नवीनतम जानकारी के साथ-साथ अच्छे रेखाचित्रों/ फोटोग्राफों, तालिकाओं इत्यादि को समुचित महत्व दिया जाता है। अतः चित्रों को अलग से सफेद कागज/ ट्रेसिंग पेपर पर काली रोशनाई (इंडिया इंक) से बनायें। फोटोग्राफ ब्लैक एंड व्हाइट हो तो उचित रहेगा। इन्हें लेख के अंत में संलग्न करें। नीचे दिये गये पते पर कृपया दो टंकित अथवा स्पष्ट हस्तलिखित प्रतियां (लगभग 3000-4000 शब्दों में) भेजें।

अंतिम तिथि : 31 दिसंबर 2011

पुरस्कार

प्रथम	-	2000/रु.
द्वितीय	-	1500/रु.
तृतीय	-	1500/रु.
प्रोत्साहन	-	500/रु.

पांच प्रोत्साहन पुरस्कार एवं अहिंदी भाषी प्रतियोगियों को दो विशेष पुरस्कार 500/रु. (प्रत्येक) के दिये जायेंगे। अतः अपनी मातृभाषा का स्पष्ट उल्लेख करें।

विशेषः पुरस्कृत रचनाएं 'वैज्ञानिक' की संपत्ति होगी। 'वैज्ञानिक' पत्रिका से संबंधित पदाधिकारी इस प्रतियोगिता में भाग नहीं ले सकेंगे। यदि रचना एक ही लेखक द्वारा लिखी गयी हो तो उचित होगा। ईमेल से भेजी गयी प्रविष्टियां प्रशंसनीय होंगी।

प्रविष्टियां भेजने का पता

- श्री विपुल सेन -

प्रतियोगिता संयोजक एवं व्यवस्थापक, 'वैज्ञानिक'
वैज्ञानिक अधिकारी, ई.डी. एण्ड सी.डी., पी. पी. परिसर,
भा.प.अ.केंद्र (B.A.R.C.), मुंबई- 400085, फोनः 022 25591154
vsen@barc.gov.in, vipkavi@gmail.com

अ नु क्र म णि का

वैज्ञानिक

वर्ष - 42 अंक - 2/3

अप्रैल - सितंबर - 2010

♦ संपादन मंडल ♦

डॉ.गोविंद प्रसाद कोठियाल

(संयोजक)

श्री जयप्रकाश त्रिपाठी

श्री कुलवंत सिंह

डॉ.जगदीश चंद्र व्यास

श्री कवींद्र पाठक

♦ व्यवस्थापन मंडल ♦

श्री विपुल सेन

(संयोजक)

श्री पी.एम.गांधी

श्री डी.एन.सिंह

श्री संजय गोस्वामी

श्री राजेश कुमार मिश्र

सदस्यता शुल्क

आजीवन

व्यक्तिगत	संस्थागत
400 रु.	1000 रू.

वार्षिक

व्यक्तिगत	संस्थागत
50 रु.	100 रू.

कार्यालय

'वैज्ञानिक', हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद,
सूचना प्रभाग, सेंट्रल कांप्लेक्स,
भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र,
मुंबई-400 085

सभी पद अवैतनिक हैं

संपादकीय - 3

लेख

1. क्या संभव होगा बुढ़ापे पर विजय पाना
   - *विनीता सिंघल* - 5
2. अतिसंवेदनशीलता (हाइपरसेंसिटिविटी)
   - *रंजना पाठक* -13
3. फास्फोलिपिड - जीवन का आधार
   - *सुभाष चन्द्र* - 23
4. वनस्पति उद्यान और जैवविविधता : कुछ नये प्रावधान
   - *नरेश चंद्र तिवारी* - 29
5. रक्त के एवज में रोग देते नन्हें कीट
   - *डॉ. शान्तिलाल चौबीसा* -33
6. कार्ल्सवर्ग पर्वतश्रेणी के तलछट की विशेषता
   - *डॉ.अनिल भि.वलसंगकर* -39
7. रेशम से नायलॉन तक
   - *डॉ. यशवंत नाइक* -45
8. सर्वरोगहारक एवं सौंदर्य वर्धक ग्वारपाठा
   - *डॉ.सुधाकर कोकाटे* - 54

टिप्पणी

1. घातक है फास्ट फूड का बढ़ता चलन-अनिल कुमार- 60
2. जिंक और स्वास्थ्य - - 62

विज्ञान समाचार - 66

1. भा.प.अ. केंद्र द्वारा विकसित भाभाट्रान-II टेलीथेरपी इकाई का वियतनाम के एक अस्पताल में उद्घाटन :
2. मृदा कार्बनिक कार्बन संसूचन किट (SOCDK):
3. डिप एंड ड्रिंक मेम्ब्रेन पाउच का विकास:
4. शुद्ध पेय जल हेतु फ्लोरीन निष्कासन की मेम्ब्रेन आधारित प्रक्रिया :
5. उच्च तापमान आक्सीजन संवेदक का विकास :

अन्य विज्ञान समाचार - *प्रेमचंद्र श्रीवास्तव* - 70

1. हरे कृत्रिम वृक्ष करेंगे तेज गति से कार्बनडायऑक्साइड का अवशोषण
2. पौधों में भी तंत्रिका तंत्र होता है
3. स्टेम कोशिकाओं से श्वासनली, कान,आंख की चिकित्सा
4. मोबाइल फोन का अधिक प्रयोग मस्तिष्क कैंसर को दावत
5. नेनोटेक्नोलॉजी - उज्ज्वल भविष्य की ओर

लतीफे ....पेट्रोलियम के !! - 75

ज्ञान विज्ञान की रोमांचक क्विज..... - *डॉ.देवकी नंदन* - 76

मनोगत - 80

लेखकों से अनुरोध

- लेखकों से निवेदन है कि विज्ञान संबंधी मौलिक लेख ही भेजें।रचनाएं सारगर्भित और स्तरीय होना आवश्यक है।
- इंटरनेट पर प्रसारित रचनाओं को आधार बना कर लेख न भेजें।
- ई मेल से रचनाएं भेजना प्रशंसनीय होगा।
- कृपया लेख हाशिया छोड़ कर, साफ-साफ पठनीय अक्षरों में लिखे। उचित होगा कि रचनाओं को टाइप करा कर भेजें। जेरॉक्स कॉपी ना भेजें.
- रचनाओं के साथ उपयोग में आनेवाली तस्वीरों की मूल प्रति भेजें। जेरॉक्स फोटो न भेजें। इससे प्रकाशन में त्रुटि आती है।
- ये उचित होगा कि लेखक अपनी रचनाएं निम्नलिखित ईमेल और पते पर भेजें।

निवेदक

विपुल सेन

व्यवस्थापक वैज्ञानिक,
वैज्ञानिक अधिकारी,
ई. डी. एण्ड सी. डी., पी. पी. परिसर
भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र, मुंबई-400085
फोन : 022-25591154
Email - vsen@barc.gov.in, vipkavi@gmail.com, jptripathi@barc.gov.in

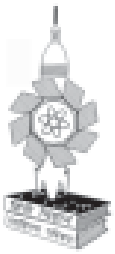

संपादकीय

'मापन प्रौद्योगिकी का विकास : नये दृष्टिकोण की आवश्यकता'

महान वैज्ञानिक लार्ड केल्विन के शब्दों में 'विषय की जानकारी होना एक पहलू है, उसकी संपूर्णता उसके सही मापन से ही आती है। सर जगदीश चंद्र बोस के कथनानुसार मापन हेतु यंत्र और यंत्रीकरण एक कल्पनाशील मस्तिष्क की ही उपज हो सकती है। सबसे उन्नत प्रयोगशाला तो मानव मस्तिष्क के अंदर निहित है।' यह तथ्य आज किसी से छुपा नहीं है कि विज्ञान में कई अभिधारणाएं एवं संकल्पनाएं, वैज्ञानिक अपनी समझ, तत्कालीन जानकारी एवं कभी-कभी अपनी दूरदृष्टि / तीव्र सोच (प्रतिभा, प्रवृति) के आधार पर रखता है। किंतु उसका सही मूल्यांकन उस घटना/ परिघटना / संकल्पना में मापन के उपरांत सत्यता सिद्ध हो जाने पर हो पाता है और वह विज्ञान के सर्वोत्तम पुरस्कार - नोबेल पुरस्कार का हकदार बनता है । यह स्पष्ट है कि शुद्ध मापन ही विज्ञान जगत की नींव का एक अभिन्न अंग है।

आज विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में जो प्रगति परिलक्षित हो रही है उसका श्रेय समय-समय पर खोजी गयी अथवा तैयार की गयी मापन विधियां/यंत्रीकरण को जाता है। इसका एक ज्वलंत उदाहरण है 'परमाण्विक बल सूक्ष्मदर्शी' का विकास। इसी सूक्ष्मदर्शी के द्वारा अद्यतन विज्ञान विषय विधा यानी आज का सर्वाधिक चर्चित एवं प्रचलित विज्ञान क्षेत्र 'नैनो विज्ञान का हाल में उजागर होना। जबकि नैनो कणों का उपयोग हजारों वर्ष पूर्व कांच में नैनो-स्वर्णकणों का समावेश करके कुछ विस्मयकारी परिघटनाओं का प्रदर्शन हो चुका था।

मानव सभ्यता के विकास में भी मापन ने अहम् भूमिका निभाई है। सभ्यता के विकास के साथ-साथ मापन की आवश्यकताएं तथा उनके परिमाण इत्यादि में परिवर्तन/विकास होते गये हैं। हम यह भी कह सकते हैं कि मानव मस्तिष्क के बढ़ने (आरंभ में लगभग 500 ग्राम से 1500 ग्राम) के साथ-साथ मानव की पहचानने की प्रकृति में उत्तरोत्तर सुधार होता गया। यह भी माना जाता है कि मानव में मूलप्रवृत्ति/प्रतिभा पहले जन्म लेती है और फिर सोच। इसी कारण मूल विचार, सोच से तेज काम करता है। सोच को 'नॉन-इन्स्टिंक्टिव' की श्रेणी में रखते हैं। फलस्वरूप मानव सोचने के बाद आवश्यकतानुसार कार्य करता है। आदि मानव ने सोचने के बाद ही शिकार करने के साधन ईजाद किए। हजारों वर्ष बाद जब मानव मिलकर रहने लगा तो उसमें नापने/मापने का विचार उपजा और इस हेतु उसने संख्या प्रणाली बनाई। लंबाई, चौड़ाई, क्षेत्रफल, आयतन जैसे माप बने। आरंभिक काल में ब्रिटिश लोग तुलना के लिए फूट तथा पत्थर इत्यादि का प्रयोग करते थे। इन सबका मानकीकरण आधुनिक युग की देन है।

यह कहा जाता है कि भारत में कुछ मानक प्राचीन काल से मौजूद थे। कौटिल्य का अर्थशास्त्र जो लगभग ईसा से 300 वर्ष पूर्व का है, में अंगुलम, वितास्ती (विटा), हस्त, धनुष, डंडा इत्यादि मानक देखने को मिलते हैं। धनुष का मान 9 तथा अंगुलम का मान 1.763 सेमी. के बराबर था। भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, कानपुर के प्रोफेसर आर.बालकृष्णन के 2009 में प्रकाशित एक शोध के अनुसार ताज महल के अभिकल्पन/निर्माण के समय में भी कौटिल्य इकाइयों का उपयोग हुआ होगा न कि पारंपारिक गज इस्लामिक पद्धति के माप (80.5 सेमी.) का। मनुष्य का विचारशील मस्तिष्क पृथ्वी एवं आकाश दोनों ही क्षेत्रों में लंबी दूरियों के मापन तथा गणना के बारे में निरंतर सोचता रहा है। 'सूर्य सिद्धांत' के अनुसार पृथ्वी का व्यास 7840 मील के समतुल्य आंका गया था, चंद्रमा की दूरी को 253,000 मील (वर्तमान मान 2,52,710 मील है) आंका गया था। सूर्य सिद्धांत (ईसा से 300 वर्ष पूर्व तथा ईसा के 600 वर्ष बाद के संस्करणों में कुछ भिन्नताएं हैं) में कैलेंडर, वर्ष की समय-दूरी, नक्षत्रों का कोणीय माप इत्यादि मौजूद हैं। इस सिद्धांत के आधार पर पृथ्वी के एक चक्कर का समय 365.2563627 दिन (अद्यतन मान 365.25636305 दिन) बताया गया था।

उन्नीसवीं सदी के मध्य तक जब अंग्रेज भारत में काफी हद तक स्थापित हो चुके थे, तो थॉमस माँट गोमरी ने ल्हासा (तिब्बत) की ऊंचाई एक अभिनव तरीके से तत्कालीन सर्वे ऑफ इंडिया में कार्यरत श्री नैन सिंह रावत (1830-1895) की मदद से मापने की योजना कार्यान्वित की। इस हेतु पैदल चलते हुए तीर्थयात्रियों के कदमों (33 इंच प्रति कदम मानकर) की संख्या एवं एक आभासी तल वाली चाय के कटोरे (जिसमें पारा था) की सहायता से 3240 मीटर निकाली जो आज की परिकृष्त मापन विधि से पाई गई ऊंचाई (3540मी.) के करीब थी।

इसी प्रकार आधुनिक विज्ञान के पितामह सर जगदीश चंद्र बोस (1858-1937) का मापन के क्षेत्र में अति उल्लेखनीय

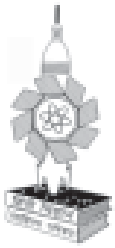

*योगदान है। पौधों के अनुक्रिया (रेस्पाँस) को माप कर उन्होंने विश्व को चकित कर दिया था। उनका बनाया 'अनुनाद रिकॉर्डर' स्वतः मिली सेकंड (10^{-3} सेकंड) तक का मापन करने में समर्थ था और चुंबकीय क्रेस्टोग्राफ जो दस लाख गुणा आवर्धन दे सकता था, पौधों की रैखिक संवृद्धि को नापने में सक्षम था। जैसे हम पहले उल्लेख कर चुके हैं कि कल्पनाशील मस्तिष्क ही एक सही युक्ति का अभिकल्पन कर सकता है। इसे चरितार्थ किया सर सी.वी.रमन ने। रमन स्पेक्ट्रोस्कोपी द्वारा प्राप्त जानकारी आज पदार्थ की **संविरचना** के अनकानेक रहस्यों को उजागर करने में अपना योगदान दे रही है।*

समुद्रों में उठने वाली लहरों (ज्वार-भाटा) का संबंध सूर्य एवं चंद्रमा की स्थिति पर निर्भर करता है, यह जानकारी लगभग 2000 वर्ष पुरानी है। इसका सही स्पष्टीकरण सर आइजक न्यूटन के गुरूत्वीय बल में निहित था और लॉर्ड केल्विन ने उनकी ऊंचाइयों का सही अनुमान 1880 में किया था, परंतु ठोस पृथ्वी में भूमध्य रेखा के पास लगभग 0.5 मीटर की जो लहर उठती है, उसका मापन 1950-60 के दशक में विकसित अतिशुद्ध एवं स्थिर परमाण्विक/आण्विक मेसर/लेसर, पर आधारित घड़ी से संभव हो पाया। वस्तुतः यह मापन 1980 के दशक में इस घड़ी द्वारा ग्लोबल पोजीशनिंग उपग्रह के माध्यम से किया जा सका।

जहां एक ओर सैद्धांतिक विज्ञान के आधार पर कई नवीनतम, अभिनव एवं विस्मयकारी घटनाओं/परिघटनाओं की संभावनाएं सामने आती हैं, वहीं प्रायोगिक वैज्ञानिकों, इंजीनियरों के लिए उनके मापन एवं गुणात्मकता की चुनौतियां बढ़ जाती हैं। पुनः ये चुनौतियां ही मापन के क्षेत्र में नए कीर्तिमान स्थापित करती हैं। आज अग्रणीय विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के लिए कई क्रांतिक प्राचलों के ऑन-लाइन मापन एवं निदान हेतु, परिष्कृत उपकरण/यंत्रीकरण की आवश्यकता है ताकि हम विभिन्न अनुप्रयोग हेतु युक्तियाँ बना सकें। मापन का क्षेत्र इतना विशाल हो गया है कि इसकी सीमा मानव की कल्पनाशक्ति एवं सर्जनशीलता ही निर्धारित कर सकती है।

जैसे पहले बताया जा चुका है कि मापन विधियां एवं शुद्धताएं समय-समय पर होने वाली आवश्यकताओं के अनुरुप परिमार्जित होती गयी हैं। किसी पदार्थ / परिघटना के बारे में जानकारी का स्तर उसके मापन पर आधारित होता है। मानव अपनी आंख से केवल दृश्य विकिरणों (0.475 माइक्रॉन) का उपयोग करके उसका एक स्थूल रूप ही जान सकता है। जैसे-जैसे मापन तकनीक की शुद्धता और समर्थता बढ़ती है, हमें नवीनत जानकारी मिलने लगती है। केवल आंख के बाद एक साधारण लैंस, फिर यौगिक लैंस, इलेक्ट्रॉन लैंस, चुंबकीय लैंस इत्यादि उत्तरोत्तर जानकारी का स्तर बढ़ाते जाते हैं। यही नहीं केवल दृश्य विकिरण के स्थान पर संपूर्ण विद्युत-चुंबकीय विकिरणों, कण-तरंगों तथा आवश्यक युक्तियों के प्रयोग से हम पदार्थ के सूक्ष्मतम से बृहत्तम स्वरूप को जान पाते हैं। इन सूक्ष्मतम तथा बृहत्तम के अंतर्गत आज तक ज्ञात सभी भौतिक, रसायनिक, जैव-भौतिक, जैव-रासायनिक प्राचलों का मान आता है। एक ओर न्यूनतम ताप, दाब, ऊर्जा, आमाप (लंबाई. चौड़ाई, मोटाई इत्यादि) का मापन आता है तों वहीं दूसरी ओर इन्हीं का अधिकतम माप जानने की आवश्यकता भी होती हैं क्योंकि प्रकृति में ये सभी विद्यमान हैं तथा जीवन इन सभी से प्रभावित होता है।

भौतिक - रासायनिक - जैविक मापन के साथ-साथ आवश्यक है गणितीय तकनीकों का विकास तथा उनके उपयोग की समर्थता ताकि हम भौतिक-रासायनिक-जैविक मापनों द्वारा एकत्रित आंकड़ों में अंतर्निहित जानकारी प्राप्त कर सकें । अत्यंत बारीकी के साथ मापन हेतु क्वांटम मानक तैयार करने, स्वास्थ्य एवं सुरक्षा के लिए नैनो-विद्युत-यांत्रिक प्रणालियां, जैव संसूचक पर्यावरणीय प्रदूषण संसूचक. आधुनिक रेडियो-खगोलीय क्षेत्र के लिए अत्योच्य विभेदन वाले यंत्रीकरण प्रतिबिंबीय मापन तकनीक, खनिज अन्वेषण हेतु विद्युत - चुंबकीय तकनीकों (हवाई तथा भूमिगत दोनों) का उपयोग, दूरदर्शीय उपकरणों के लिए परिष्कृत यंत्रीकरण, सीन्क्रोट्रॉन विकिरणों का मापन में उपयोग, अतिचालक त्वरकों का उपयोग, लेजर स्पेक्ट्रोस्कोपी यंत्रीकरण, संलयन प्लाज्मा स्थितियों में मापन तकनीक, 'सर्न' के विश्वस्तरीय एलएचसी (LHC) प्रयोग हेतु यंत्रीकरण आदि महत्वपूर्ण क्षेत्र हैं जिनमें उल्लेखनीय प्रगति हुई है। परंतु इतना ही काफी नहीं है। ये सीमाएं समय के साथ बदलती रहती हैं। प्राकृतिक आपदाओं ने हमेशा हमें पूर्वानुमान तकनीकों के प्रति सचेत रहने और उच्च श्रेणी के मापन तकनीकों के विकास के लिए बाध्य किया है। क्योंकि प्रकृति श्रेष्ठतम है इसमें संदेह नहीं है कि आज अंतर्राष्ट्रीय परिदृश्य में मापन तकनीक के क्षेत्र को नया दृष्टिकोण मिला है। हाल में कई नोबेल पुरस्कार ऐसे वैज्ञानिक समूहों को मिल रहा है जिन्होंने मापन तथा यंत्रीकरण में क्रांति लायी है। विकासशील देशों जैसे भारत को भी अपने ऐसे वैज्ञानिक / इंजीनियर जो यंत्रीकरण कार्य से जुड़े हैं को समुचित प्रोत्साहन देने की आवश्यकता है।

***'वैज्ञानिक' का प्रस्तुत अंक अप्रैल-सितंबर 2010 'प्रतियोगिता विशेषांक'** है जिसमें वर्ष 2009 की 'डॉ. होमी भाभा विज्ञान लेख प्रतियोगिता' में पुरस्कृत लेखों को संजोया गया है। इसके अतिरिक्त अन्य सामग्री जैसे टिप्पणियां (लघु लेख) विज्ञान समाचार, विज्ञान-विनोद एवं क्वीज इत्यादि भी सदैव की भांति दिये गये हैं. प्रस्तुत अंक के बारे में अपनी प्रतिक्रिया एवं सुझावों को भेज कर इसे परिमार्जित करने में हमें अपना सहयोग अवश्य दें।*

डॉ. गोविंद प्रसाद कोठियाल

डॉ.होमी भाभा हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता 2009 में द्वितीय पुरस्कार प्राप्त

क्या संभव होगा बुढ़ापे पर विजय पाना

- विनीता सिंघल -
सहसंपादक, निस्केयर, डॉ. के. एस. कृष्णन मार्ग, नई दिल्ली- 110012

यद्यपि वैज्ञानिकों का मानना है कि वृद्धावस्था के रहस्य प्रत्येक व्यक्ति के उन हार्मोनों में छिपे हैं जो एक निश्चित उम्र अथवा व्यस्क होने की शुरूआत के साथ कम मात्रा में स्रवित होने लगते हैं। ये हार्मोन होते हैं- जनन हार्मोन, वृद्धि हार्मोन, पीनियल हार्मोन एवं मेलाटोनिन आदि। वैज्ञानिकों ने इस श्रेणी में अब एक और हार्मोन-एड्रीनल कॉर्टेक्स स्टीरॉइड सम्मिलित किया है जिसे डिहाइड्रोएपियनड्रोस्टेरॉन कहते हैं।

इस वैज्ञानिक युग में जब आज वैज्ञानिकों ने प्रकृति के कई रहस्यों को उजागर कर दिया है तो बुढ़ापा न आने देने की भी ठान ली है। दूसरे शब्दों में उसने मृत्यु को भी पीछे धकेलने की सोच ली है तो जिदंगी इतनी लंबी हो जायेगी....इतनी लंबी हो जायेगी कि आदमी अपने बुढ़ापे की चिंता करना ही छोड़ देगा। विकसित देशों में मानव की आयु सीमा 80-82 वर्ष तक पहुंच गई हैं। हमारे यहां भी आयु सीमा जो कभी 32 वर्ष हुआ करती थी अब 60 से ऊपर पहुंच गई है।

इस क्षेत्र में अब तक की सबसे बड़ी उपलब्धि उन जीवों की खोज है जिनसे शुक्राणुओं की पूंछ की मरम्मत हो सकती है। वास्तव में, टिलोमियर ही बुढ़ापा लाने में मुख्य भूमिका निभाते हैं और वे कोशिकाओं के विखंडन के साथ छोटे होते चले जाते हैं, कोशिकाएं नष्ट होने लगती हैं और परिणाम होता है बुढ़ापा। टिलोमियर की लंबाई को बनाए रख कर इस प्रभाव से बचा जा सकता है। चीनी वैज्ञानिकों ने देखा है कि अपेक्षाकृत थोड़ी मात्रा में सिलिनियम टिलोमियर संश्लेषण में काम आने वाले एंजाइम, टिलोमरेज की क्रियाशीलता को बढ़ाकर टिलोमियर की लंबाई को घटने से रोका जा सकता है।

इतना ही नहीं, वैज्ञानिकों ने 'अमर' जीनों का पता लगाने का भी दावा किया है। इटली के मिलान शहर में वैज्ञानिकों के एक दल ने ऐसी जीन का पता लगाने का दावा किया है जो वृद्धावस्था के लिये उत्तरदायी होती है। इस जीन की खोज से वैज्ञानिकों में आशा जगी है कि इस जीन पर नियंत्रण से कम से कम एक तिहाई उम्र तो बढ़ाई ही जा सकेगी। मिलान में प्रो.पियर लुइगी पेलिकिक के नेतृत्व में कार्य कर रहे वैज्ञानिकों के एक दल ने अपने प्रयोग चूहों पर किये और उनके सफल परिणामों में संभावना व्यक्त की है कि लोगों को इसका लाभ लगभग दस सालों बाद ही मिल पायेगा।

मिलान के यूरोपियन इंस्टीट्यूट ऑफ आंकोलॉजी के वैज्ञानिकों ने इस जीन को पी 66 एस एच सी (P66 shc) का नाम दिया हैं। वैज्ञानिकों के अनुसार यह जीन डी एन ए का कण है जो किसी व्यक्ति विशेष का जीवन काल निर्धारित करता है। प्रो. पेलिकिक के नेतृत्व में किये गये परीक्षण के आधार पर वैज्ञानिकों ने दावा किया है कि यदि इस जीन की कुछ क्रियाओं पर अंकुश लगा दिया जाए तो मानव कोशिकाओं के जीवन काल को बढ़ाया जा सकता है।

प्रो. पेलिकिक के अनुसार वृद्धावस्था शरीर की कोशिकाओं के अंदर होने वाली ऑक्सीकरण क्रियाओं का परिणाम है। हमारे खाना खाने से, पराबैंगनी किरणों के शरीर पर प्रभाव से, हमारे शरीर की कोशिकाओं में ऑक्सीकारक पदार्थो का निर्माण होता है, जो श्वसन क्रिया के द्वारा हमारे शरीर की कोशिकाओं में पहुंच जाते है। यह क्रिया बिल्कुल एक इंजन

वैज्ञानिक जीवन काल को प्रभावित करनेवाले जीनों को ढूंढ़ने के लिए गोलकृतियों पर शोध कर रहे हैं

की कार्यविधि की तरह होती हैं जिसमें इंजन जहां एक ओर ऊर्जा प्रदान करता है तो दूसरी ओर प्रदूषण भी उत्पन्न करता है। ठीक इसी प्रकार जीन ऊर्जा उत्पादन के लिये श्वसन करती है तो उसी समय स्वयं को ऑक्सीकृत भी कर लेती हैं। इसी ऑक्सीकरण की क्रिया के कारण हम बूढ़े होते हैं। जब मानव शरीर की कोशिकाएं स्वयं को इन ऑक्सीकारक आक्रमणों से नहीं बचा पाती हैं तो सुरक्षात्मक प्रक्रिया आरंभ हो जाती है और इस क्रिया के आगे स्थानांतरित होने से पहले ही वे स्वयं नष्ट हो जाती हैं। प्रो. पेलिकिक के अनुसार इस जीन का कार्य केवल वृद्धावस्था पर नियंत्रण रखना ही नहीं है वरन् उस प्रोटीन का उत्पादन करना भी है जो कोशिकाओं में ऊर्जा उत्पादन का निर्धारण करती हैं।

इन वैज्ञानिकों ने पहले यह प्रयोग कीटों पर किये और उसके बाद कई स्तनपाइयों पर यह प्रयोग दोहराये, फिर जिन चूहों से प्रोटीन विलगित किया गया उनको कई महीनों तक विशिष्ट देख-रेख में रख कर उनमें आये परिवर्तनों को परखा गया। यद्यपि उनमें बाह्य तौर पर तो कोई दुष्प्रभाव नहीं पाये गये परंतु आंतरिक दुष्प्रभावों के होने की आशा वैज्ञानिकों ने अवश्य प्रकट की।

अपने अनुसंधानों को जारी रखते हुए वैज्ञानिकों ने पी 66 एस एच सी जीन रहित नई कोशिका बनाई और एक चुहिया में उसे संरोपित करके उसे जनन क्रिया हेतु छोड़ दिया गया। परिणामस्वरूप, जो नर एवं मादा चूहे पैदा हुये थे वृद्धावस्था को प्रभावित करने वाली तथाकथित जीनों से रहित थे और आज इनकी संख्या यूरोपियन ऑन्कोलॉजिकल इंस्टीटयूट ऑफ मिलान में लगभग 300 हो गई हैं। मजे की बात यह है कि जहां साधारण चूहों का जीवनकाल 24 महीने होता है, वहीं इनका जीवन काल 35 महीने का रहा है। इस उपलब्धि को ध्यान में रखते हुए प्रो. पेलिकिक का मानना है कि इस प्रकार सन् 2020 तक हम 120 वर्ष तक अपनी उम्र बढ़ा पाने की आशा रख सकते हैं। ईसा से 3000 वर्ष पूर्व मनुष्य का औसत जीवन काल लगभग 20 वर्ष था जो आज 76 तथा 77 के बीच है।

कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के बायोमेडिकल जिरोंटोलॉजिस्ट डॉ. आत्री डी ग्रे का मानना है कि एक दिन बूढ़े होने की प्रक्रिया पर अवश्य पूर्णविराम लगाया जा सकेगा। उनके इस विश्वास का आधार यह है कि एक ओर तो उन्हें आशा है कि सभी अंगों को उगाने के लिए स्टेम कोशिकाओं का उपयोग

होने लगेगा साथ ही कोशिकाओं में चयापचय क्रिया के कारण जमा हुए और शरीर को बुढ़ापे की ओर ले जाने वाले मलबे को साफ करने के लिए सक्षम जीवाणु और नैनोरोबोट उपलब्ध होंगे। इस तरह न केवल कोशिकाएं सदैव जवान बनी रहेंगी, बल्कि लगभग 20 खरब कोशिकाओं से बना मानव शरीर भी स्वस्थ और युवा बना रहेगा।

बनारस हिंदू विश्वविद्यालय के प्रोफेसर, डॉ एम. एम. कानूनगो जिनका पूरा जीवन बुढ़ापे की पहेली को हल करने में ही बीता है, के अनुसार बढ़ती उम्र के साथ एंजाइमों से जुड़े आइसोएंजाइम बदलते जाते हैं। इसके साथ ही उनको नियंत्रित करने वाले जीनों की अभिव्यक्ति भी बदल जाती हैं। उनका कहना है कि विशिष्ट हार्मोन देकर बढ़ती उम्र के साथ बुढ़ापे से जुड़े कुछ एंजाइमों की घटती मात्रा को बढ़ाकर बुढ़ापे पर रोक लगाई जा सकती हैं। कोशिका के केंद्रक में क्रोमोसोम की जिस क्रोमेटिन में डी. एन. ए. बंद होता है, वह बढ़ती आयु के साथ सघन होता जाता है। परिणामस्वरूप संदेशवाहक आर. एन.ए. का उत्पादन घट जाता है। आवश्यक एंजाइमों का निर्माण कम हो जाने का यह भी एक कारण है। डॉ कानूनगो ने चूहों पर किए गए प्रयोगों में देखा कि हृदय की पेशियों की धड़कन के लिए जरूरी ऊर्जा प्रदान करने वाला एंजाइम क्रिएटिन फॉस्फोकाइनेज भी बढ़ती उम्र के साथ घटने लगता है। इस एंजाइम की मात्रा में कमी आना दिल की कोशिकाओं में मौजूद कुछ प्रोटीनों से संबंधित होता है। ये प्रोटीन क्रिएटिन फॉस्फोकाइनेज जीन से जुड़ जाते हैं और उसे सक्रिय कर देते हैं। चूहों को स्टीरॉयड हार्मोन देने पर इन प्रोटीनों की मात्रा बढ़ गयी और सीपीके जीन की क्रिया भी तेज हो गई और सीपीके अधिक मात्रा में बना। आशा की जा रही है कि इसके आधार पर बुढ़ापे को दूर रखने वाली दवाएं बनाना संभव हो पाएगा।

देखा गया है कि उम्र बढ़ने के साथ-साथ मस्तिष्क में सूचना के संग्रह, स्मरण, सीखने और प्रतिक्रिया करने से जुड़े दो एंजाइमः एसिटिल कोलिन ईस्टरेज और कोलिन एसिटिल टांस्फरेज की मात्रा भी कम होने लगती है। इसका नतीजा होता है स्मृति लोप अर्थात याददाश्त का कम हो जाना। इसी प्रकार घाव भरने में फाइब्रोनेक्टिन प्रोटीन की प्रमुख भूमिका होती है जो यकृत में बनता है। बुढ़ापे में घाव भरने में ज्यादा समय लगने का कारण होता है फाइब्रोनेक्टिन प्रोटीन को बनाने वाले जीन की अभिव्यक्ति में कमी। इस तरह बुढ़ापे का कारण कोई एक जीन नहीं है बल्कि इसके लिए अनेक जीन जिम्मेदार होते हैं जो अलग-अलग अंगों में कार्यरत होते हैं। सभी अंग एक साथ ही शिथिल नहीं होते। कुछ अंगों पर बुढ़ापें का असर जल्दी होता है तो कुछ पर देर से। इनमें से कुछ जीनों की क्रियाशीलता को बाहरी हार्मोन आदि देकर बढ़ाया जा सकता है। इस तरह न केवल वृद्धावस्था से जुड़ी समस्याओं को एक हद तक कम किया जा सकता है बल्कि आयुकाल भी बढ़ाया जा सकता है।

हालांकि वैज्ञानिकों ने जीन आधारित अनुसंधानों से कृमियों एवं मक्खियों का जीवन काल, जिनका जीवनकाल अतिसूक्ष्म होता है, बढ़ाया है। परन्तु स्तनपाइयों के लिये ये सफलता अभी मिलना बाकी है। वैज्ञानिकों का मानना है कि पी 66 एस एच सी जीन की क्रियाओं को बाधित कर देने से कैंसर, वृद्धावस्था के दौरान होने वाली अल्झेमीर एवं एथिरोस्क्लेरोसिस (रक्तवाहिकाओं का सख्त हो जाना) जैसी कोशिकाओं को नष्ट करने वाली भयंकर बीमारियों से भी निजात पाई जा सकेगी। क्योंकि यदि वृद्धावस्था की क्रिया धीमी कर दी जायगी, तो कोशिकाओं के नष्ट होने की दर भी कम हो जायेगी और वृद्धावस्था के साथ-साथ भयानक रोगों से भी मुक्ति मिल सकेगी।

पिछली दो सहस्त्राब्दियों में औसत जीवन काल लगभग चार गुना बढ़ा है। यद्यपि औषधियों द्वारा वृद्धावस्था को रोक पाना संभव नहीं हुआ है परंतु दवाओं के प्रयोग से मृत्यु को अवश्य दूर धकेला जा सका है। विभिन्न रोगों की वैक्सीन, एंटीबायोटिक औषधियां एवं नई शल्य चिकित्सा की तकनीकें आज मृत्यु दर कम करने में सफल रही हैं। अमेरिका की न्यूजर्सी के इंटरनेशनल लांगिविटी इंस्टीट्यूट में आधुनिक एंटी एजिंग सिस्टम का विकास किया गया है। किसी रोगी के व्यक्तिगत आंकड़ों को कंप्यूटर में फीड करके उसकी मानसिक, शारीरिक एवं संवेदी अभिव्यक्तियों की स्थिति जांची जा सकती है। इस प्रणाली के द्वारा शरीर के समस्त विटामिनों, खनिजों के चित्रों के अतिरिक्त रोगी के शरीर के तंत्रिका संवेदों की भी जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

यहां इतनी अत्याधुनिक चिकित्सा तकनीकें उपलब्ध हैं कि चिकित्सक, रोगियों के डी एन ए या जेनेटिक ब्लू प्रिंट को देखकर यह बता सकते हैं कि इस रोगी में कोशिकाओं का क्षय होगा या नहीं। इस तकनीक से यद्यपि जीवन काल तो बढ़ाया नहीं जा सकता लेकिन 50 से 80 वर्ष की आयु के लोगों की शारीरिक एवं मानसिक स्थिति को सुधारा जा सकता है।

यद्यपि वैज्ञानिकों का मानना है कि वृद्धावस्था के रहस्य प्रत्येक व्यक्ति के उन हार्मोनों में छिपे हैं जो एक निश्चित उम्र अथवा व्यस्क होने की शुरूआत के साथ कम मात्रा में स्रवित

मानव कोशिका में क्रोमोसोम

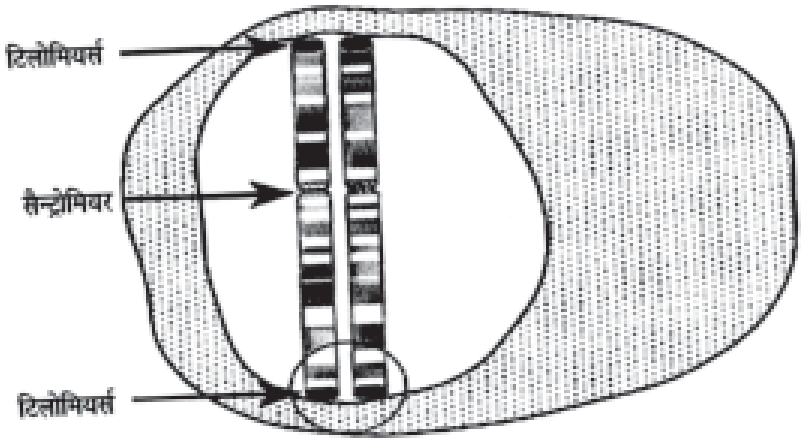

क्रोमोसोमों के सिरों पर डी एन ए के अनुवर्ती अनुक्रम टिलोमियर्स विशेष रचनाएं होती हैं, जो क्रोमोसोम के सिरों को क्षतिग्रस्त होने से बचाती हैं। हर बार कोशिका विभाजन के समय कुछ टिलोमेरिक डी. एन. ए. नष्ट हो जाता है। जिसके कारण कोशिकाएं बूढ़ी होने लगती है। चित्र में दिखाया है कि प्रयोगशाला में प्रवर्धित मानव कोशिकाओं में टिलोमियर की लंबाई बढ़ा देने से मानव कोशिकाओं की उम्र बढ़ गई और वे देर से बूढ़ी हुई।

60–85 वर्ष की आयु में मस्तिष्क

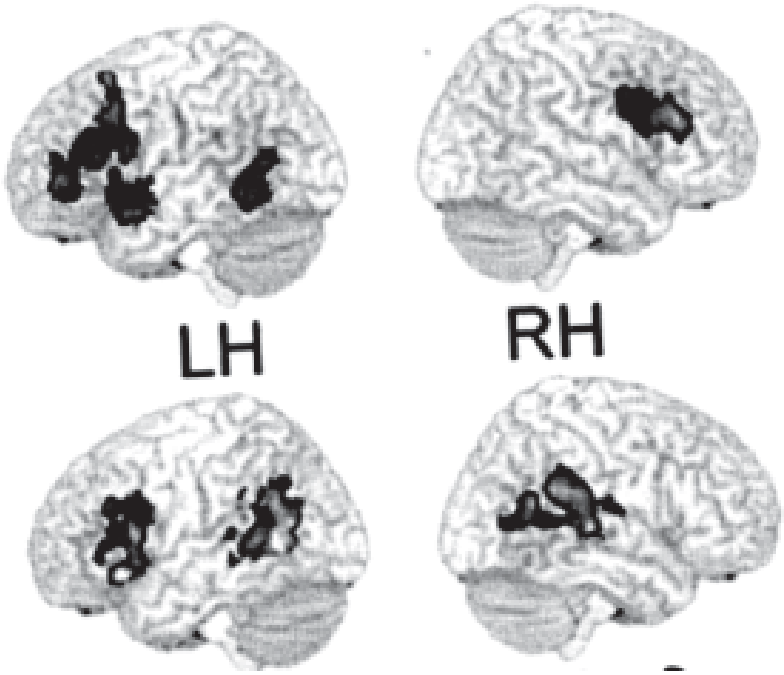

15–35 वर्ष की आयु में मस्तिष्क

उम्र का सबसे अधिक प्रभाव मस्तिष्क पर ही होता है

होने लगते हैं। ये हार्मोन होते हैं- जनन हार्मोन, वृद्धि हार्मोन, पीनियल हार्मोन एवं मेलाटोनिन आदि। वैज्ञानिकों ने इस श्रेणी में अब एक और हार्मोन-एड्रीनल कॉर्टेक्स स्टीरॉइड सम्मिलित किया है जिसे डिहाइड्रोएपियनड्रोस्टेरॉन कहते हैं।

लंबी जिंदगी जीने की चाह सबको होती है। यही कारण है कि वैज्ञानिक कई वर्षों से जीवन काल बढ़ाने के लिये अनुसंधानों में जुटे रहे हैं, ताकि वे मौत का रहस्य जानने के साथ-साथ अमरत्व की भी खोज कर ले। और इसी प्रयास में लगे वैज्ञानिको ने फ्रूट फ्लाई यानी एक मक्खी पर अध्ययन करते हुए ऐसे जीनों की खोज की है जो उसे अनिश्चित काल तक जीवित रखने की क्षमता प्रदान करते हैं। सक्रिय होने पर ये जीन इस मक्खी को उनके सामान्य जीवन काल से तीन गुना अधिक समय तक जीवित रखने में सक्षम होते हैं। और यदि इन मक्खियों के पंख एवं अन्य महत्वपूर्ण अंग अधिक जीवन जीने के बाद भी सही सलामत रहे तो ये और भी ज्यादा समय तक जीवित रह सकती हैं। क्योंकि फल मक्खी की एक पीढ़ी सामान्य जीवन से तीन गुना अधिक लगभग 130 दिनों तक जीवित रहती है और उसकी मौत वृद्धावस्था के कारण नहीं वरन् उसके पैर, पंख टूट जाने पर या भोजन आदि पर्याप्त मात्रा में न मिल पाने के कारण होती है। वैज्ञानिकों का मानना है कि मानव में भी इसी प्रकार की प्रणाली है और वैज्ञानिक यदि इस प्रणाली को भलीभांति जान लें तो आदमी की उम्र 140 वर्ष से भी ज्यादा बढ़ाई जा सकती है, इस दिशा में कार्य कर रहे कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय के **इवॉल्युश्नरी** बायोलॉजी के प्रो. माइकल रोज ने फल मक्खियों की अनेक ऐसी पीढ़ियां विकसित की हैं। जिन पर फल मक्खियों को अनिश्चित काल तक जीवित रखने वाली प्रणाली का स्पष्ट असर देखा जा सकता है। वैज्ञानिकों का मानना है कि यदि इस आनुवंशिक प्रणाली से जुड़े रासायनिक तत्वों/यौगिकों का पता चल जाए तो वृद्धावस्था निरोधी गोलियां एवं इंजेक्शन बना कर आयु को बढ़ाया जा सकेगा।

प्रो. रोज के अनुसार इस आनुवंशिक प्रणाली से समस्त जीवन की कोशिकाओं का काया पलट किया जा सकता है और जीवन को लंबी आयु तक जिया जा सकता है। प्रो. रोज के अतिरिक्त ब्रिटेन की रिसर्च एंटी एजिंग संस्था भी उन जीनों की खोज में जुटी है, जिनके कारण कई लोग तो बुढ़ापे में भी स्वस्थ रहते हैं और कुछ लोग प्रौढ़ावस्था में ही तरह-तरह की बीमारियों के शिकार हो जाते हैं।

कुछ वैज्ञानिकों का मानना है कि यदि जीवन काल बढ़ाने की बजाय वृद्धावस्था में होने वाली बीमारियों से निपट लिया जाए, तो ज्यादा उचित रहेगा। क्योंकि लोग बुढ़ापे में भी स्वस्थ जीवन जी कर चिरायु बने रहेंगे और हम कह सकेंगे 'जीवेम शरदः शतम' !

क्या क्लोथो रोक पाएगा बुढ़ापे को

क्लोथो प्रोटीन का ऊर्जा उपापचय और जराजन्यता पर प्रभाव चमत्कृत करने वाला है क्योंकि इसका विघटन समय से पहले ही जराजन्यता सिंड्रोम उत्पन्न करता है। इसका नाम यूनान की एक देवी के नाम पर रखा गया है, जिसके बारे में कहा जाता है कि वह जीवन के धागे कातती हैं। जिन चूहों में क्लोथो जीन खोजा गया उनकी उम्र दूसरे चूहों की अपेक्षा 20 से 30 प्रतिशत अधिक पाई गई। जिन चूहों में यह जीन डाला गया, उनमें इस जीन ने धमनियों को कड़ा नहीं होने दिया, हड्डियों को पतला नहीं होने दिया और त्वचा पर झुर्रियां भी नहीं पड़ने दीं। हालांकि क्लोथो की कमी के कारण उत्पन्न वृद्धावस्था के लक्षणों की क्रिया विधि को अभी पूरी तरह समझा नहीं जा सका है। यह देखा गया है कि क्लोथो जीन से जो प्रोटीन पैदा होता है, वह एक वृद्धि हार्मोन है, जो इंसुलिन की मात्रा बढ़ा देता है। अमेरीका में वर्ष 1997 में डलास की टेक्सॉस विश्वविद्यालय के साउथ वेस्टर्न सेंटर के वैज्ञानिक डॉ मकोरो कुरोओ ने इस जीन की खोज की थी.

प्रोजेरियाः जब बचपन में आ जाता है बुढ़ापा

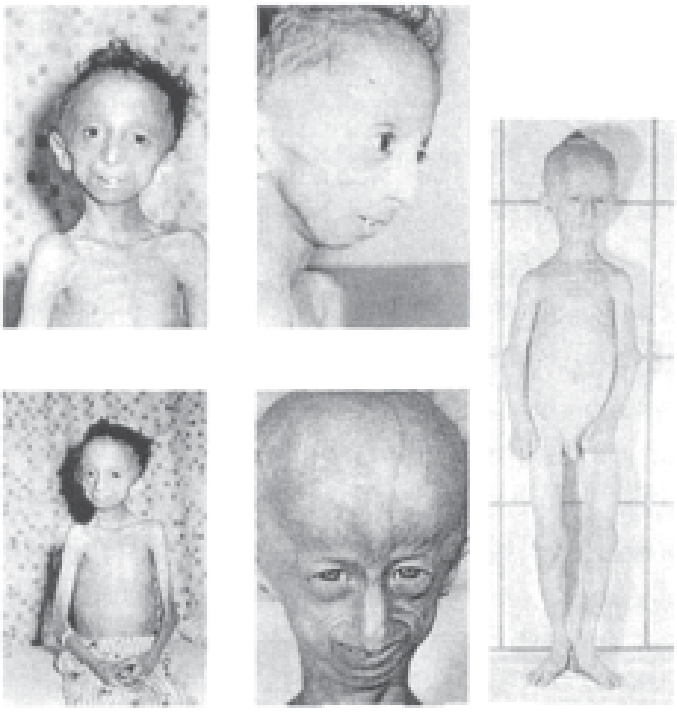

प्रोजेरिया से ग्रस्त बच्चे की विभिन्न अवस्थाएं

हाल ही में प्रदर्शित फिल्म 'पा' एक ऐसे बच्चे की कहानी है, जो अपने माता-पिता से पहले ही बूढ़ा हो जाता है। वह ग्रस्त है एक ऐसे रोग से जिसमें वह दूसरे बच्चों की अपेक्षा सात गुना तेजी से बुढ़ापे की ओर बढ़ रहा है और ऐसे में वह बच्चा किस कठोर अंतर्विरोध से गुजरता है, यही 'पा' में दिखाया गया है। इस बीमारी का नाम है प्रोजेरिया। प्रोजेरिया एक ऐसा दुर्लभ आनुवंशिक रोग है जिसे बच्चों में समय से पहले आए बुढ़ापे से पहचाना जाता हैं। डॉ जोनाथन हचिन्सन ने 1886 में सबसे पहली बार इस रोग के बारे में बताया था। इसके बाद वर्ष 1904 में डॉ हेस्टिंग्स गिलफोर्ड ने एक बच्चे में इस रोग के लक्षण देखे. प्रोजेरिया रोग को इन दोनों वैज्ञानिकों के नाम से अर्थात हचिन्सन गिलफोर्ड प्रोजेरिया सिंड्रोम के नाम से भी जाना जाता है। यह 40 लाख बच्चों में से किसी एक को प्रभावित करने वाला दुर्लभ रोग है। अब तक दुनिया भर में लगभग 130 बच्चों में इस रोग की पहचान की जा चुकी है।

इस रोग में बच्चा, छोटी सी उम्र में ही तेजी से वृद्धावस्था की ओर जाने लगता है। वृद्ध होने की यह गति सामान्य वृद्धि की गति से लगभग सात गुना अधिक होती है। इसलिए इस रोग से ग्रस्त बच्चा दस वर्ष की उम्र में ही सत्तर वर्ष का लगने लगता है। उसके बाल झड़ जाते हैं, त्वचा लटकी हुई होती है। जिसमें झुर्रियां पड़ जाती हैं। भौंहे और बरौनियां झड़ जाती हैं। शरीर में वसा की कमी हो जाती हैं, दांत असामान्य होते हैं, जोड़ सख्त हो जाते हैं, अक्सर कूल्हे की हड्डी

विस्थापित हो जाती है और सिर, चेहरे की तुलना में बहुत बड़ा हो जाता है। ये कुछ सामान्य शारीरिक लक्षण है जो प्रोजेरिया से पीड़ित बच्चे में देखने को मिलते हैं। प्रोजेरिया से पीड़ित बच्चों का कद छोटा हैं, आंखे उभरी हुई और चेहरा पतला होता हैं. इस रोग से ग्रस्त बच्चे में अट्ठारह महीने की आयु से ही रोग के लक्षण दिखाई देने लगते हैं। हालांकि इन बच्चों की मानसिक विकास सामान्य बच्चों जैसा ही होता है। यही कारण है कि इस रोग से ग्रस्त 10 वर्षीय बच्चे का दिमाग तो दस वर्षीय बच्चे के दिमाग जैसे ही होता है लेकिन शरीर वृद्धों के समान कमजोर व जर्जर होता है। ये बच्चे वृद्धावस्था में होने वाली बीमारियों जैसे कि विभिन्न हृदय रोग, उच्च रक्त चाप, गठिया आदि बीमारियों से भी ग्रस्त होते हैं।

यह रोग किसी लिंग विशेष से संबंधित नहीं होता बल्कि लड़के और लड़कियों में समान रूप से देखने को मिलता है। दुनिया भर के अनेक देशों में इस रोग से पीड़ित बच्चे देखने को मिलते हैं इसलिए यह भी नहीं कहा जा सकता कि किसी विशेष जाति या विशेष देश के बच्चे इस रोग के शिकार होते हैं। विशेषज्ञों का मानना है कि यह कोई वंशानुगत रोग नहीं है क्योंकि इस रोग के रोगी इतने लंबे समय तक जीवित ही नहीं रहते कि उनका विवाह हो सके और वे संतति को जन्म दे सकें। वैज्ञानिक इस बीमारी में इसलिए भी रूचि ले रहे हैं क्योंकि उन्हें लगता है कि इसके जरिए वे सामान्य रूप से आने वाली वृद्धावस्था के कारणों का भी पता लगा सकेंगे।

भारत में भी इस रोग से पीड़ित बच्चे मौजूद हैं। बिहार और छत्तीसगढ़ में इस तरह के बच्चे हैं। बल्कि छत्तीसगढ़ के एक बच्चे का ही रूप है जो 'पा' में ऑरो के किरदार में दिखाई देता है। इसके अलावा बिहार में बिसुल खान और रजिया खातून के सात बच्चों में से पांच बच्चे इस रोग के शिकार हैं जबकि दो बच्चे बिल्कुल सामान्य हैं। पांच पीड़ित बच्चों में से अब तक तीन बच्चों की मृत्यु हो चुकी है। विश्व भर में यह एकमात्र ऐसा उदाहरण है जिसमें एक ही परिवार के पांच बच्चे प्रोजेरिया रोग से पीड़ित हैं।

प्रोजेरिया रोग क्यों होता है, इसका सही कारण बता पाना आज भी संभव नहीं है। आधुनिकतम खोजों के अनुसार इसका कारण, प्रोटीन लेमाइन को कोड्रित करने वाली जीन लेमाइन-ए में होने वाले उत्परिवर्तन को माना जाता है। यह प्रोटीन अत्यंत महत्वपूर्ण होती है, क्योंकि यह कोशिकाओं के केंद्रक के चारों ओर एक सुरक्षा कवच बनाती हैं। प्रोजेरिया के रोगियों में कोशिका के केंद्रक का आकार आश्चर्यजनक रूप से असामान्य हो जाता है। चिकित्सक सामान्यतया शारीरिक लक्षणों के आधार पर ही इस रोग की उत्परिवर्तन की जांच भी करते हैं। रक्त में उच्च-घनत्व वाली लाइपोप्रोटीन या अच्छे कोलेस्ट्रॉल की कमी भी इस रोग की पहचान में सहायक होते हैं। हचिन्सन- गिलफोर्ड प्रोजेरिया सिंड्रोम के रोगियों के मूत्र में एक रसायन, हयालुरॉनिक अम्ल, की मात्रा भी बहुत बढ़ी हुई देखी गई हैं।

यूं तो प्रोजेरिया का अभी तक कोई इलाज नहीं था लेकिन नवीन खोजों ने कुछ आशाएं अवश्य जगायी हैं। अमेरीका में चूहों पर किए गए प्रयोगों ने बाल्यावस्था के इस रोग के उपचार का मार्ग सुझाया है। अनुसंधानकर्ताओं के अनुसार डी. एन. ए. की एक जीन के एक अक्षर में हुआ परिवर्तन प्रोजेरिया से पीड़ित बच्चे को जन्म देता है। यह उत्परिवर्तन, वैज्ञानिकों के अनुसार गर्भधारण से पहले पिता के शुक्राणु में होता है जिसके कारण एक विषालु प्रोटीन बनती है जो कोशिका के आनुवंशिक पदार्थ से युक्त केंद्रक में जाकर उसे विरूपित कर देती है।

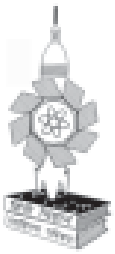

डॉ.होमी भाभा हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता- 2009 में द्वितीय पुरस्कार प्राप्त

अतिसंवेदनशीलता (हाइपरसेंसिटिविटी)

- रंजना पाठक -

एन-08, ओल्ड मंडाला, बीएआरसी कालोनी, ट्रांबे, मुंबई-400 088

अतिसंवेदनशीलता (Hypersensitivity) किसी प्रतिजन के लिए संवेदनशील व्यक्ति की, उसी प्रतिजन से पुनः संपर्क में आने पर, उसके प्रतिरक्षा तंत्र द्वारा प्रदर्शित की जाने वाली एक तीखी प्रतिक्रिया है, जिसके अत्यंत घातक लक्षण प्रकट होते हैं। यहां तक कि प्रभावित व्यक्ति की मृत्यु भी हो सकती है। अतिसंवेदनशीलता सभी व्यक्तियों में नहीं पायी जाती है, लगभग 10 फीसदी मानव जनसंख्या ही इसके द्वारा प्रभावित होती है। चिकित्सा के संबंध में अतिसंवेदनशीलता को एलर्जी कहते हैं और इसके जनक कारक एलर्जेंस कहलाते हैं। प्रस्तुत लेख में अतिसंवेदनशीलता के कारण, प्रकार एवं इसके प्रभावों की विस्तृत जानकारी दी गई है।

अतिसंवेदनशीलता प्रतिरक्षा तंत्र की परिवर्तित क्रियाशीलता है जिसके फलस्वरूप लाभकारी सुरक्षात्मक प्रतिरक्षा तंत्र अनियंत्रित हो जाता है। एक सुरक्षात्मक प्रतिरक्षी अनुक्रिया में प्रतिजन (Antigen) (जीवाणु अथवा विषाणु) या तो नष्ट कर दिये जाते हैं अथवा निष्क्रिय कर दिये जाते हैं। परंतु अतिसंवेदनशीलता में जब पीड़ित व्यक्ति उसी प्रकार के प्रतिजन से दुबारा संक्रमित होता है, तो उसके प्रत्युतर में उस व्यक्ति का प्रतिरक्षा तंत्र उत्तेजित होकर ऐसे रसायन स्रावित करता है जिससे स्वयं उसके प्रतिरक्षा तंत्र की कोशिकाएं क्षतिग्रस्त हो जाती हैं तथा पीड़ित व्यक्ति की मृत्यु का कारण बन जाती है। किसी व्यक्ति का प्रतिरक्षा तंत्र प्राकृतिक रूप से उसके शरीर को रोगकारकों से सुरक्षा प्रदान करता है। कभी-कभार यह तंत्र अति उत्साही हो जाता है और स्वयं के लिए कष्टकारी हो जाता है। इस घटना को ठीक उसी प्रकार से समझा जा सकता है जैसे कि एक अतिअनुरागी नौकर अपने मालिक की नाक में बैठी मक्खी को एक धारदार चाकू से मारने की कोशिश करे। शरीर में प्रतिरक्षी अनुक्रियाएं हमेशा सुरक्षा प्रदान करने के लिए निर्देशित होती हैं परंतु अतिसंवेदनशीलता में यह अनुक्रियाएं पीड़ित के लिए घातक बन जाती हैं।

अतिसंवेदनशीलता का एक सामान्य उदाहरण पेनिसिलीन इंजेक्शन के कारण उत्पन्न एलर्जी है। अस्पतालों में कभी-कभी पेनीसिलीन इंजेक्शन लगाने के तुरंत बाद मरीज की मृत्यु हो जाती है। ऐसा मरीज के शरीर में इस इंजेक्शन के लिए पहले से मौजूद प्रतिजैविकों की अतिसंवेदनशीलता के कारण होता है। मरीज के शरीर में इस इंजेक्शन के लिए प्रतिजैविक (Antibody) की पहले से उपस्थिति के कई कारण हो सकते हैं। जैसे कि या तो पहले कभी उस मरीज ने पेनीसिलीन का इंजेक्शन लिया हो या फिर वंशानुगत तरीके से प्रतिजैविक उसके शरीर में विद्यमान हों। अतिसंवेदनशीलता के लक्षण तुरंत ही, एक मिनट के अंदर, अथवा विलंब से, 24 से 48 घंटे बाद प्रकट हो सकते हैं।

अतिसंवेदनशीलता उत्पन्न करने वाले कारक :

अतिसंवेदनशीलता कई कारकों द्वारा उत्पन्न हो सकती है। यह या तो बाह्य कारकों (Entrinsic Factors) (शरीर में बाहर से प्रवेश करने वाले) या अंतः कारकों (Intrinsic factors) (शरीर के अंदर विद्यमान) द्वारा उत्पन्न हो सकती है।

कुछ प्रमुख कारक अन्य हैं -

(i) औषधियां, जैसे कि पेनीसिलीन, सल्फामाइड, एस्प्रीन इत्यादि।

(ii) वायुजनिक कणों, जैसे कि पराग कण, बीजाणु, घरेलू धूल-मिट्टी, जंतुओं की खाल एवं पंख इत्यादि।

(iii) खाद्य पदार्थ, जैसे कि शेलफिस, स्ट्राबेरी, बैंगन इत्यादि।

(iv) संक्रामक चीजें, जैसे कि जीवाणु, विषाणु, कवक, परजीवी इत्यादि।

(v) असमान समूह के रक्त को दूसरे व्यक्ति पर चढ़ाया जाना।

अतिसंवेदनशीलता के प्रकार :

अतिसंवेदनशीलता को दो तरह से वर्गीकृत किया गया है।

1. प्रतिक्रिया पर लगनेवाले समय के आधार पर
2. रोगकारकों की विभिन्न प्रकार की क्रियाविधियों के आधार पर.

1. प्रतिक्रिया पर लगनेवाले समय के आधार पर वर्गीकरणः

व्याधि लक्षणों के विकसित होने में लगनेवाले समय के आधार पर अतिसंवेदनशीलता को दो भागों में वर्गीकृत किया गया है -

(अ) आसन्न अतिसंवेदनशीलता

जब प्रतिरक्षी अनुक्रियाएं अतिशीघ्र, लगभग एक मिनट के अंदर, प्रकट होती हैं तो यह आसन्न अतिसंवेदनशीलता कहलाती है। औषधियां जैसे कि पेनीसिलीन इत्यादि के प्रति अतिसंवेदनशील होना इस श्रेणी में आता है। 'हाय फीवर' इसका दूसरा उदाहरण है। इस प्रकार की अतिसंवेदनशीलता के विशिष्ट अभिलक्षण निम्नलिखित हैं -

(i) इसमें प्रतिरक्षी अनुक्रियाएं शीघ्रता से प्रकट एवं विलीन होती हैं।

(ii) कुछ मिनटों में ही उत्तेजनात्मक लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं।

(iii) यह प्रतिजन एवं प्रतिजैविक की परस्पर क्रिया से संबंधित होती है।

(iv) यह बी-कोशिकाओं द्वारा उत्पन्न प्रतिजैविकों द्वारा नियंत्रित होती है अतः यह प्रतिजैविक प्रेरित अतिसंवेदनशीलता होती है।

(v) यह सीरम द्वारा सक्रिय रूप से एक-दूसरे को संक्रमित करती है।

(vi) इसे एंटी एलर्जेन की अल्प मात्रा द्वारा आसानी से निष्क्रिय किया जा सकता है।

(ब) विलंबित अतिसंवेदनशीलता

जब प्रतिरक्षी अनुक्रियाएं 24 से 72 घंटे के अंदर प्रकट होती हैं, तब विलंबित अतिसंवेदनशीलता कहलाती है। विलंबित अतिसंवेदनशीलता का एक परिचित उदाहरण मैनटॉक्स क्रिया है, जो किसी ऐसे व्यक्ति की त्वचा में ट्युबरकुलिन के इंजेक्शन से उत्पन्न होती है, जिसके अंदर मायकोबैक्टीरियम द्वारा पहले से ही संक्रमित होने पर कोशिका आधारित प्रतिरक्षा व्याप्त होती है। यह क्रिया 24 से 48 घंटे के भीतर उत्पन्न होती है। विलंबित अतिसंवेदनशीलता के विशिष्ट लक्षण इस प्रकार हैं-

(i) इसके लक्षण धीरे-धीरे प्रकट होते हैं और काफी समय तक विद्यमान रहते हैं।

(ii) इसमें उत्तेजनात्मक लक्षण 24 से 48 घंटे के बाद ही प्रकट होते हैं।

(iii) यह प्रतिजन एवं टी-कोशिकाओं की परस्पर क्रिया से संबंधित होती है अतः इसे कोशिका आधारित प्रतिरक्षा

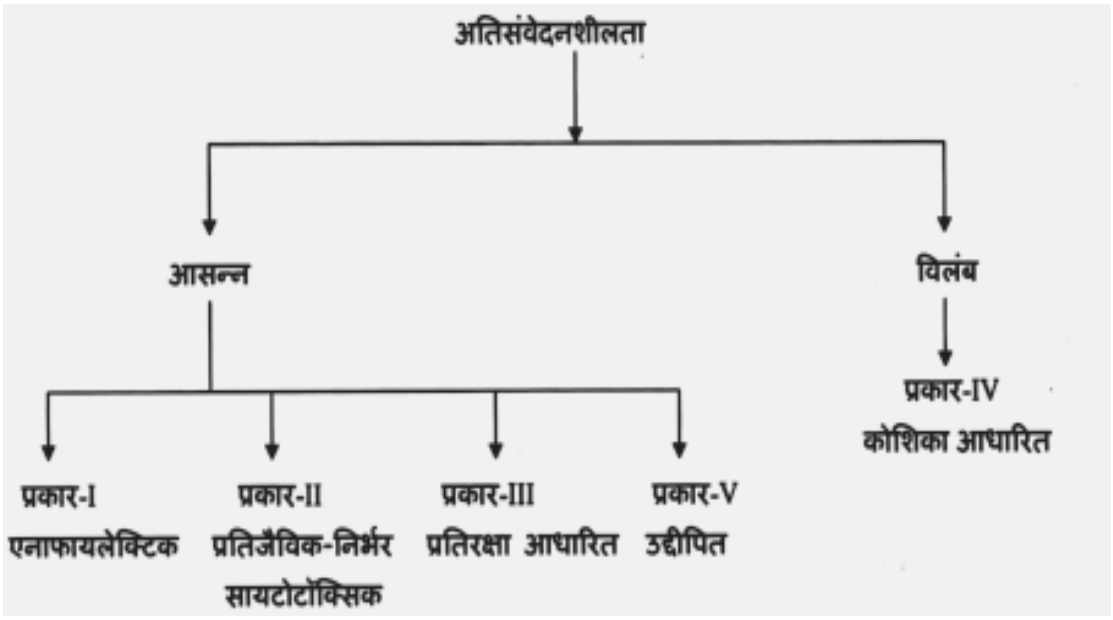

चित्र-1, अतिसंवेदनशीलता का वर्गीकरण

के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है।

(iv) यह सीरम द्वारा, संक्रमित व्यक्ति से दूसरों में नहीं पहुंच सकती है परंतु टी-कोशिकाओं के माध्यम से दूसरों में स्थानांतरित हो सकती है।

(v) इसे औषधियों द्वारा आसानी से नियंत्रित नहीं किया जा सकता है।

(vi) इसके प्रभाव को कारटीकोस्टेराइडस के माध्यम से कम किया जा सकता है।

2. रोगकारकों की विभिन्न प्रकार की क्रियाविधियों के आधार पर वर्गीकरण :

कूम्ब्स एवं गेल (1963) ने रोगकारकों की विभिन्न प्रकार की क्रियाविधियों के आधार पर अतिसंवेदनशीलता के निम्नलिखित पांच प्रकार हैं -

प्रकार - i - : एनाफायलेक्टिक अतिसंवेदनशीलता

प्रकार - ii : प्रतिजैविक-निर्भर सायटोटॉक्सिक अतिसंवेदनशीलता।

प्रकार - iii : प्रतिरक्षा सम्मिश्र आधारित अतिसंवेदनशीलता

प्रकार - iv : कोशिका आधारित अतिसंवेदनशीलता

प्रकार - v : उद्दीपित अतिसंवेदनशीलता

इनमें से सिर्फ प्रकार iv- की अतिसंवेदनशीलता विलंबित अतिसंवेदनशीलता की श्रेणी में आती है तथा अन्य सभी आसन्न अतिसंवेदनशीलता के प्रकार हैं। **(चित्र - 1)**

प्रकार - i : एनाफायलेक्टिक अतिसंवेदनशीलता

एनाफायलेक्सिस किसी जीवधारी में ऐसे बाह्यपदार्थों जिनके लिए वह पहले से ही संवेदनशील है, के दुबारा संपर्क में आने से प्रकट होने वाली एक अतितीव्र प्रतिक्रिया है जिसमें हिस्टामिन, सेरोटोनिन एवं अन्य सक्रिय पदार्थ उत्सर्जित होते हैं, एनाफायलेक्सिस का अर्थ है 'बिना सुरक्षा' एनाफायलेक्सिस एक आसन्न प्रकार की अतिसंवेदनशीलता है। एनाफायलेक्सिस में प्रतिजैविक संवेदनशील होस्ट की ऊतक कोशिकाओं (मास्ट-कोशिकाओं एवं बेसोफिल्स) की सतह पर स्थित होते हैं। जब कोई प्रतिजन कोशिका स्थिर प्रतिजैविक के साथ जुड़ता है तो उपरोक्त सक्रिय पदार्थों का उत्सर्जन होता है, जिनसे लक्षण उत्पन्न होते हैं।

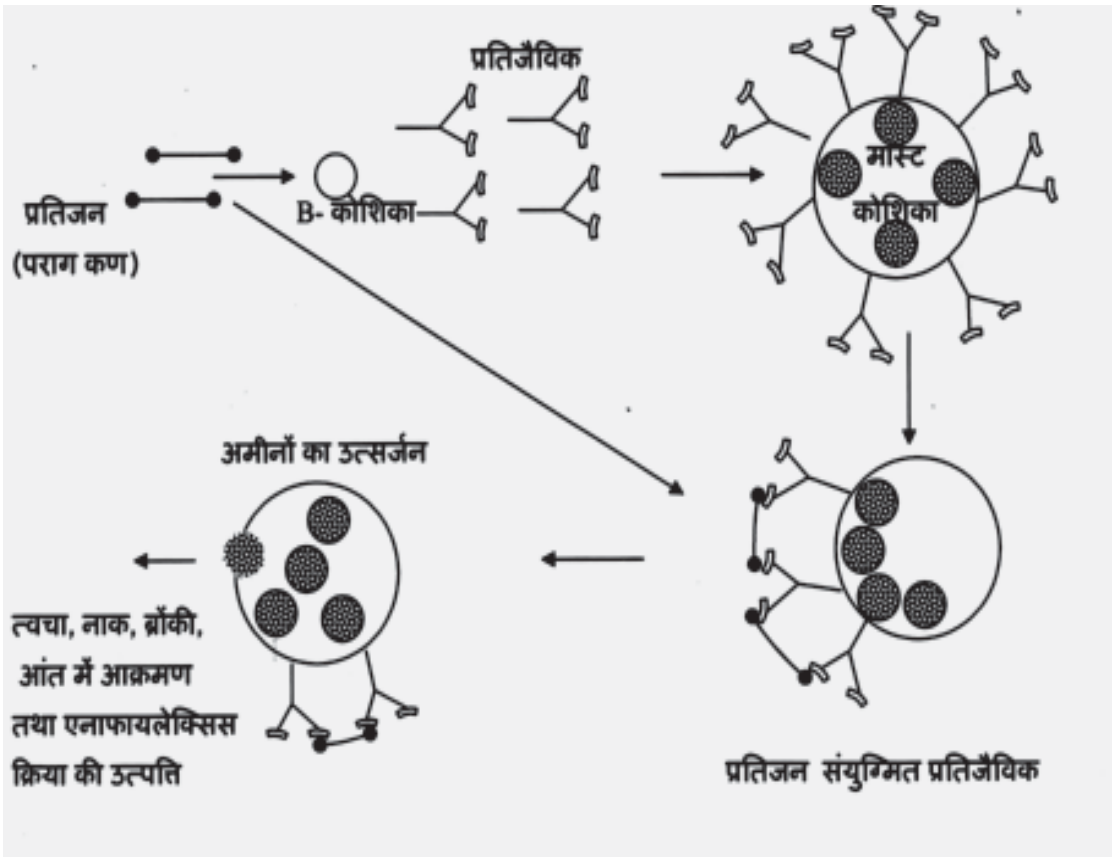

चित्र-2, एनाफायलेक्सिस (Anaphylaxis)की क्रियाविधि का प्रदर्शन

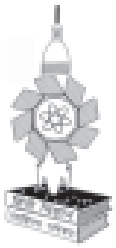

एनाफायलेक्सिस उत्पन्न करने वाले कारकों में प्रमुख हैं - कुछ औषधियां, घरेलू धूल-मिट्टी, जंतुओं की खाल, पराग कण, खाद्य एलर्जेंस इत्यादि।

एनाफायलेक्सिस के लक्षण : इसके निम्न चिकित्सीय लक्षण उत्पन्न हो सकते हैं -

1. **संभावित मृत्यु** : जब एक संवेदनशील व्यक्ति को पेनीसिलीन का इंजेक्शन दिया जाता है, तो वह एनाफायलेक्टिक क्रिया प्रदर्शित करता है। ब्रोंकी एवं ब्रोंकियोल्स का तीव्र संकुचन होता है। नाजुक मांसपेशियां सिकुड़ जाती हैं और कोशिकाएं नष्ट होने लगती हैं। व्यक्ति को श्वास लेने में तकलीफ होती है तथा एस्फिक्सिया (फेफड़ों में आक्सीजन की कमी) के कारण मिनटों में उसकी मृत्यु हो सकती है।

2. **उल्टी एवं दस्त** : यह खाद्य एलर्जेंस के कारण होता है।

3. **रेटिकेरिया** : रेटिकेरिया त्वचा की रक्त वाहिकाओं द्वारा प्रदर्शित की जानेवाली क्रिया है जिसमें त्वचा के सामान्य रंग की अपेक्षा गहरे लाल अथवा पीले रंग के धब्बे उभर आते हैं। इसमें अक्सर तेज खुजलाहट होती है। यह कुछ प्रकार के खाद्य पदार्थों अथवा औषधियों के कारण होता है।

4. **एटापी** : एक विशिष्ट प्रकार की अतिसंवेदनशीलता के लिए कोका (1923) द्वारा एटापी नाम दिया गया जिसका शाब्दिक अर्थ होता है अज्ञात अथवा विलक्षण। यह प्राकृतिक कारणों से होने वाली अतिसंवेदनशीलता जैसे कि 'हे ज्वर' एवं अस्थमा के लिए प्रयोग होता है। एटापी के लिए जिम्मेदार प्रतिजन श्वास द्वारा प्रवेश करने वाले (पराग कण, घरेलू धूल-मिट्टी इत्यादि), खाद्य पदार्थ (अंडा, दूध इत्यादि) अथवा संपर्क में आनेवाले अन्य व्यक्ति हो सकते हैं. एटापी वंशानुगत तरीके से भी विकसित होती है। एटापिक एलर्जी IgE नामक प्रतिजैविकों के अधिक उत्पादन के कारण होती है जो सामान्यतः IgA नामक प्रतिजैविकों की न्यूनता के कारण होता है। यह ज्ञात हुआ है कि स्तनपान करने वाले बच्चों की अपेक्षा बोतल से दूध पीने वाले बच्चों में बाद **एटापी** विकसित होने की प्रवृत्ति अधिक होती है। एटापी में विकसित होने वाले लक्षणों में प्रमुख हैं - आंखों में कंजक्कटिवाइटिस, श्वास नली में राइनिटिस , त्वचा में डर्मेटाइटिस, रेटिकेरिया, वमन, दस्त, इत्यादि।

एनाफायलेक्सिस की क्रियाविधि :

एनाफायलेक्टिक अतिसंवेदनशीलता के लिए मुख्यतः जिम्मेदार एक प्रकार की इन्मयूनोग्लोबुलिन होती है जिसे IgE प्रतिजैविक कहते। जब किसी व्यक्ति में एलर्जेंस (प्रतिजन) पहलीबार आक्रमण करता है तो यह B- कोशिकाओं के साथ जुड़ जाता है. एलर्जेंस B- कोशिकाओं को प्लाज्मा कोशिकाओं में परवर्तित होने के लिए **उद्दीपित** करते हैं। प्लाज्मा कोशिकाएं IgE प्रतिजैविकों का निर्माण करती हैं। पहलीबार IgE निर्मित प्रतिजैविक अपने Fc खंडों की सहायता से मास्ट कोशिकाओं की सतह के साथ संयुग्मित हो जाती हैं। इस क्रिया से व्यक्ति को कोई नुकसान नहीं होता है परंतु अब वह व्यक्ति उस विशेष प्रकार के प्रतिजन के लिए संवेदनशील हो चुका है। जब वह व्यक्ति उसी प्रकार के प्रतिजन से दुबारा संक्रमित होता है तब उसके लिए अतिसंवेदनशीलता का खतरा उत्पन्न हो जाता है। मास्ट कोशिकाओं के सतह से जुड़ी हुई IgE प्रतिजैविक प्रतिजन को पकड़ लेती हैं और वह प्रतिजन IgE प्रतिजैविकों को विपरीत तरीके से जोड़ देते हैं। जैसे ही IgE प्रतिजैविकों का विपरीत संयुग्मन होता है, मास्ट कोशिकाओं के भीतर एन्जाइमिक क्रियाएं शुरू हो जाती हैं, जिसके फलस्वरूप हिस्टामिन, सेरोटोनिन, हेपारिन इत्यादि पदार्थों का उत्सर्जन होता है। ये पदार्थ एनाफायलेक्सिस क्रिया के प्राथमिक कारण हैं। संपूर्ण क्रियाविधि को चित्र-2 में प्रदर्शित किया गया है।

रोकथाम एवं उपचार : एनाफायलेक्टिक अतिसंवेदनशीलता की रोकथाम एवं उपचार हेतु निम्न विधियां अपनायी जा सकती हैं -

1. एलर्जेस के संपर्क में आने से बचना चाहिए।

2. हाइपोसेन्सटिविटी विकसित करना - एनाफायलेक्टिक क्रियाएं IgE प्रतिजैविकों के कारण होती हैं। जबकि IgG प्रतिजैविक, IgE प्रतिजैविक के निर्माण को अवरुद्ध कर देती हैं। IgG प्रतिजैविक एलर्जेस को मास्ट कोशिका संयुग्मित प्रतिजैविक के संपर्क में आने से रोकती हैं और इस प्रकार एलर्जी उत्पन्न नहीं होने देती हैं।

3. मास्ट कोशिकाओं को स्थिरता प्रदान करना - एनाफायलेक्टिक क्रियाएं मास्ट कोशिकाओं के उद्दीपन के फलस्वरूप होती हैं। मास्ट कोशिकाओं के उद्दीपन को कुछ औषधियों जैसे कि आइसोप्रेनालीन एवं सोडियम क्रोमोग्लायकेट द्वारा रोका जा सकता है।

4. हिस्टामिन ग्राही कोशिकाओं को रोकना - एंटीहिस्टामिन्स एनाफायलेक्सिस क्रिया को दबा देते हैं। दरअसल एंटीहिस्टामिन्स मास्ट कोशिकाओं से हिस्टामिन के उत्सर्जन को नहीं रोकते हैं परंतु वे कोशिका की सतह पर हिस्टामिन के ग्राही पर रोक लगाते हैं।

5. हिस्टामिन्स के उत्सर्जन को अवरुद्ध करना - स्टेरोइड एवं क्रोमोग्लायकेट औषधियां मास्ट कोशिकाओं से हिस्टामिन्स के उत्सर्जन को रोकती हैं. ये औषधियां मास्ट कोशिकाओं की लाइसोसोमल मेम्ब्रेन को स्थायित्व प्रदान करती हैं, जिससे ये कोशिकाएं हिस्टामिन्स के उत्सर्जन को प्रेरित नहीं

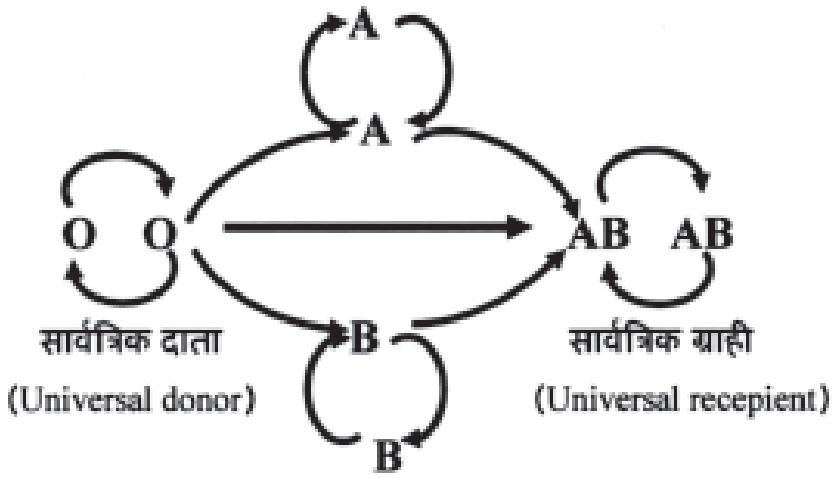

चित्र -3. ABO रक्त समूह प्रणाली एवं ट्रांसफ्यूजन क्रिया का प्रदर्शन|

कर पाती हैं।

प्रकार -(ii) : प्रतिजैविक-निर्भर सायटोटॉक्सिक अतिसंवेदनशीलता

प्रकार - (ii) अतिसंवेदनशीलता प्रतिजैविकों एवं कोशिका संलग्न प्रतिजनों की परस्पर क्रिया के कारण होती है. जब प्रतिजैविक, कोशिका की सतह पर स्थित प्रतिजनों से जुड़ते हैं तो कोशिका सायटोटॉक्सिक बन जाती है। इसीलिए इसका नाम सायटोटॉक्सिक अतिसंवेदनशीलता है। इसके कुछ प्रमुख उदाहरण है - असमान रक्त समूहों के कारण रक्त कोशिकाओं का एग्लुटिनेशन एवं लायसिस, एरिथ्रोब्लास्टोसिस फीटेलिस, ऑटोइम्यून हीमोलायटिक अनीमिया इत्यादि।

सायटोटॉक्सिक अतिसंवेदनशीलता के प्रकार :

क्रिया से संबंधित प्रतिजन के आधार पर सायटोटॉक्सिक अतिसंवेदनशीलता को दो भागों, आइसोइम्यून क्रियाओं तथा ऑटोइम्यून क्रियाओं में बांटा गया है।

1. आइसोइम्यून क्रियाएं

आइसो इम्यून क्रियाएं, आइसो एंटीजेंस एवं प्रतिजैविकों के संयोग से होती है। आइसो एंटीजेंस एक ही प्रजाति के प्रतिजन होते हैं जिनके गुणधर्म अलग-अलग प्रतिजैविकों के लिए भिन्न -भिन्न होते हैं। रक्त समूह प्रतिजन तथा ल्युकोसाइट प्रतिजन आइसोएंटीजेन हैं। इनके द्वारा प्रदर्शित की जाने वाली आइसोइम्यून क्रियाएं हैं - ट्रांसफ्यूजन क्रियाएं, एरिथ्रोब्लास्टोसिस फीटेलिस तथा प्रत्यारोपण अस्वीकार्य क्रियाएं।

ट्रासफ्यूजन क्रियाएं :

ट्रांसफ्यूजन एक व्यक्ति के रक्त को दूसरे व्यक्ति के रक्त संचार में प्रवेश कराने की प्रक्रिया है। यदि दाता एवं ग्राही के रक्त समूह आपस में मिलान नहीं करते हैं तो रक्त कोशिकाओं का एग्लुटिनेशन अथवा लायसिस हो जाता है। यह प्रक्रिया ABO रक्त समूहों के साथ-साथ Rh रक्त समूह में भी पाई जाती है.

ABOरक्त समूह प्रणाली लोगों को चार समूहों, यथा समूह -A , समूह- B, समूह - AB, तथा समूह - O, में विभाजित करती है। इस प्रकार का विभाजन ABOरक्त समूह में व्याप्त प्रतिजन एवं प्रतिजैविकों के आधार पर किया गया है। ABOरक्त समूह में उपस्थित प्रजिन दो तरह के होते हैं प्रतिजन -A एवं प्रतिजन - B ये लाल रक्त कणिकाओं (ABO) की सतह पर उपस्थित होते हैं। इसी प्रकार प्रतिजैविक भी दो तरह के होते हैं एंटी- A एवं एंटी- B जो रक्त सीरम (Blood serum) में पाए जाते हैं।

A रक्त समूह के व्यक्तियों में प्रतिजन- A और प्रतिजैविक एंटी- B पाए जाते हैं। B रक्त समूह वाले व्यक्तियों में प्रतिजन - B तथा एंटी -A उपस्थित होते हैं। AB रक्त समूह के व्यक्तियों में प्रतिजन -A और प्रतिजन - B दोनों उपस्थित होते हैं परंतु इनमें कोई प्रतिजैविक नहीं होते हैं। O रक्त समूह के व्यक्तियों में कोई प्रतिजन नहीं होते हैं परंतु दोनों प्रतिजैविक एंटी- A एवं एंटी- B उपस्थित होते हैं। ABO रक्त समूह प्रणाली में प्रतिजनों एवं प्रतिजैविकों के वितरण को सारणी-1 में दर्शाया गया है।

मनुष्य के रक्त में प्रतिजन एवं प्रतिजैविकों के इसप्रकार के वितरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि एक ही रक्त समूह में प्रतिजन - A और प्रतिजैविक -A एक साथ उपस्थित नहीं रह सकते हैं। ठीक इसी प्रकार एक ही रक्त में प्रतिजन - B और प्रतिजैविक- B भी उपस्थित नहीं होंगे। यदि किसी कारण ऐसा हुआ तो रक्त का एग्लुटिनेशन अथवा लायसिस होना तय है।

जब कभी -A रक्त समूह और - B रक्त समूह के व्यक्तियों के बीच रक्त का आदान-प्रदान होता है तो ट्रांसफ्यूजन क्रिया होती है। उदाहरण के लिए जब समूह A का व्यक्ति समूह B के व्यक्ति को रक्त देता है तो A रक्त समूह में उपस्थित एंटीजन-A , B -रक्त समूह वाले व्यक्ति के एंटी- A से जुड़ जाता है और इस प्रकार लाल रक्त कणिकाओं (RBCs) का एग्लूटिनेशन हो जाता है।

AB- रक्त समूह वाले व्यक्तियों के रक्त में कोई प्रतिजैविक नहीं होते हैं अतः वह किसी भी रक्त समूह वाले व्यक्ति से रक्त ग्रहण कर सकता है। इसीलिए -AB रक्त समूह के व्यक्ति सार्वत्रिक ग्राही (Universal recepient) कहलाते हैं। इसी तरह - Oरक्त समूह में कोई प्रतिजन नहीं होते हैं अतः वह किसी भी रक्त समूह के व्यक्ति को अपना रक्त दे सकता है। इसी कारण से - O रक्त समूह के व्यक्ति सार्वत्रिक दाता (Universal donor) कहलाते हैं। ABO रक्त समूह प्रणाली एवं ट्रांसफ्यूजन क्रिया को चित्र- 3 में प्रदर्शित किया गया है। ट्रांसफ्यूजन क्रिया में -IgM प्रकार की प्रतिजैविक शामिल होती है जिसे आइसोहीमेग्लूटिनिन (Isoheamagglutinins) कहते हैं और इसीलिए यह क्रियाएं आइसोइम्यून क्रियाएं कहलाती हैं।

एरिथ्रोब्लास्टोसिस फीटेलिस :

एरिथ्रोब्लास्टोसिस फीटेलिस एक हीमोलायटिक बीमारी है जो प्रतिजन और प्रतिजैविक की क्रिया के फलस्वरूप उत्पन्न होती है। यह बीमारी Rh^- माता के गर्भ में विकसित हो रहे Rh^+ शिशु में होती है। लैंडस्टीनर (1940) ने रीसस बंदरों के रक्त में एक प्रकार के प्रतिजन का पता लगाया और इसे -Rh प्रतिजन या प्रतिजन -D नाम दिया। यह प्रतिजन कुछ मनुष्यों की RBC में भी पाया जाता है। जिन व्यक्तियों में यह प्रतिजन पाया जाता है वो Rh^+ कहलाते हैं तथा जिनमें यह अनुपस्थित होता है वो Rh^- कहलाते हैं। यह Rh रक्त समूह प्रणाली कहलाती है। भारत में 93.5 फीसदी लोग Rh^+ हैं और लगभग 6.5 फीसदी लोग ही Rh^- हैं। Rh रक्त समूह प्रणाली में कोई प्राकृतिक प्रतिजैविक नहीं होते हैं, परंतु जब

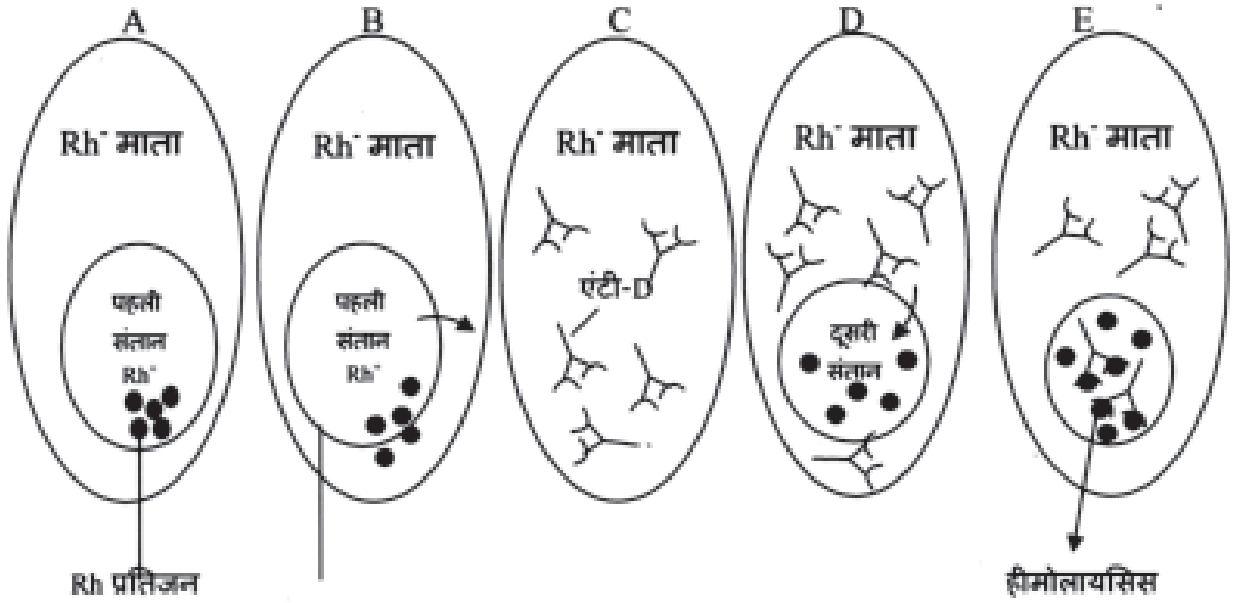

प्रथम प्रसव **Rh** प्रतिजन का **Rh^-** माता में प्रवेश

माता में एंटी-**D** का उत्पन्न होना

दूसरी संतान में एंटी-**D** का प्रवेश

चित्र-4 नवजात शिशु में हीमोलायटिक क्रिया का प्रदर्शन

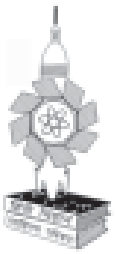

कोई Rh^- व्यक्ति किसी Rh^+ व्यक्ति से रक्त ग्रहण करता है तो Rh^- व्यक्ति के रक्त में Rh प्रतिजैविक जिन्हें एंटी- D कहते हैं, उत्पन्न हो जाते हैं। इसप्रकार यह एंटी- D उस व्यक्ति के रक्त में हमेशा मौजूद रहता है तथा इससे उस व्यक्ति को कोई नुकसान नहीं होता है। अब यह व्यक्ति प्रतिजन -D के लिए संवेदनशील हो चुका है। जब कभी दुबारा यह व्यक्ति Rh^+ रक्त के संपर्क में आता है तो प्रतिजन - D और एंटी- D आपस में क्रिया कर हीमोलायसिस (Haemolysis) को जन्म देते हैं।

इस प्रकार का हीमोलायसिस Rh^- महिला के गर्भ में पल रहे भ्रूण में होता है। जब एक महिला का विवाह एक Rh^+ पुरुष से होता है तो उनकी होनेवाली संतान Rh^+ होगी। Rh^+ बच्चे की RBC में प्रतिजन - D उपस्थित होते हैं। प्रसव के समय प्लेसंटा के टूटने से माता और भ्रूण को जोड़ने वाली रक्त वाहिकाओं के माध्यम से शिशु का रक्त माता से मिल जाता है। जिसके परिणामस्वरूप कुछ प्रतिजन-D माता के रक्त में प्रवेश कर जाते हैं। इसके प्रत्युत्तर में Rh^- माता के रक्त में एंटी-D उत्पन्न होते हैं जो जीवनपर्यंत उपस्थित रहते हैं। खतरा तो तब होता है जब वह महिला दूसरी बार गर्भवती होती है क्योंकि माता के रक्त में उपस्थित एंटी- D के भ्रूण की RBC में मौजूद प्रतिजन के साथ जुड़ने से भ्रूण की RBC का लायसिस (Lysis)हो जाता है। इस क्रिया को चित्र-4, में दिखाया गया है।RBC के लायसिस के कारण पीत ज्वर (Jaundice) हो जाता है और बच्चे की मृत्यु हो जाती है। इतना ही नहीं अगले होने वाले सभी बच्चों के साथ यही घटना होती रहेगी। भ्रूणों में पायी जाने वाली यह हीमोलायटिक बीमारी एरिथ्रोब्लास्टोसिस फीटेलिस कहलाती है।

अब इस समस्या का उपचार ज्ञात है।Rh^- माता को प्रथम प्रसव के तुरंत बाद अथवा 72 घंटे के भीतर एंटी-D का डोज दिया जाता है. इस डोज से माता को Rh प्रतिजन के प्रति संवेदनशील होने से बचाया जा सकता है। Rh रक्त समूह के प्रतिजैविक IgG प्रकार के होते हैं और एरिथ्रोब्लास्टोसिस फीटेलिस एक आइसोइम्यून क्रिया है।

प्रत्यारोपण अस्वीकार्य क्रियाएं

(Transplant rejection reaction) :

प्रत्यारोपण से ल्युकोसाईट प्रतिजनों अथवा HLA प्रतिजनों के लिए प्रतिजैविक उत्पन्न हो सकते हैं। ये प्रतिजैविक प्रत्यारोपित ऊतकों के लिए सायटोटाक्सिक होते हैं। इस तरह से क्षतिग्रस्त हुए ऊतकों पर फैगोसायटिक (Phagocytic) तथा लिम्फाइड (Lymphoid) कोशिकाएं आक्रमण करती हैं और आस-पास के ऊतकों के लिए भी खतरा उत्पन्न कर देती हैं।

2. ऑटोइम्यून क्रियाएं (Autoimmune reactions)

ऑटोइम्यून क्रियाएं वो है जो ऑटो एंटीजन और प्रतिजैविकों के बीच होती हैं। ऑटो एंटीजन व्यक्ति विशेष में पाए जानेवाले प्रतिजन होते हैं। ये प्रतिजन स्वयं के लिए हानिकारक नहीं होते हैं। परंतु ये प्रतिजन प्रतिरक्षा तंत्र में उद्दीपन पैदा कर सकते हैं और इस प्रकार स्वयं के प्रति प्रतिरक्षी क्रियाएं उत्पन्न करते हैं। ऑटोइम्यून क्रिया के कुछ प्रमुख उदाहरण हैं- ऑटोइम्यून हीमोलायटिक अनीमिया (Autoimmune heamolytic anaemia), ऑटोइम्यून थ्राम्बोसायटोपेनिक परप्युरा (Autoimmune thrombocytopaenic purpura), ऑटोइम्यून थायराइडिटिस (Autoimmune thyroiditis), ऑटोइम्यून ग्लोमेरूलोनेफ्राइटिस (Autoimmune glomerulonephritis) इत्यादि.

सायटोटॉक्सिक क्रिया की क्रियाविधि :

सायटोटाक्सिक क्रिया में निम्न में से किसी एक विधि द्वारा कोशिकाएं क्षतिग्रस्त हो सकती हैं-

1. फेगोसायटोसिस (Phagocytosis) : प्रतिजैविक कोशिका की सतह पर प्रतिजनों से जुड़ते हैं। मैक्रोफेजेस (macrophases) इस प्रकार की प्रतिजैविक संयुग्मित कोशिकाओं से बंध जाते है। ये मैक्रोफेजेस इन कोशिकाओं को पूरी तरह निगल जाते हैं।

2. लायसिस (Lysis) : प्रतिजैविक संयुग्मित कोशिकाएं फेगोसायटिक कोशिकाओं से उनके C3b ग्राही के माध्यम से जुडती हैं। ये कोशिकाएं इसी क्रम में C_8 और C_9 लायटिक घटकों तक जुड़ती चली जाती है और लायसिस प्रक्रिया द्वारा कोशिकाओं को हानि पहुंचाती हैं।

3. नष्ट करना (Killing) : प्रतिजैविक संयुग्मित कोशिकाओं पर सायटोटाक्सिक घातक कोशिकाएं आक्रमण कर सकती हैं जिनमें C3bके लिए ग्राही भाग और IgG के लिए Fcखंड होते हैं। (चित्र-5)

प्रकार-(iii) : प्रतिरक्षा सम्मिश्र आधारित अतिसंवेदनशीलता :

कभी-कभी शरीर में प्रतिजनों की अत्यधिक मात्रा प्रवेश कर जाती है। इसके प्रत्युतर में शरीर द्वारा प्रतिजैविकों की अधिक सांद्रता उत्पन्न होती है। ये प्रतिजन और प्रतिजैविक आपस में जुड़कर एक अघुलनशील अवक्षेप बनाते हैं जिसे प्रतिजन-प्रतिजैविक सम्मिश्र (Antigen-antibody complex) अथवा प्रतिरक्षा सम्मिश्र (Immune complex) कहते हैं। ये सम्मिश्र मिनटों में ही ग्लोमेरुलस, सायनोवियम, त्वचा आदि की रक्त वाहिनियों से जुड़ जाते हैं और ऊतकों को क्षतिग्रस्त

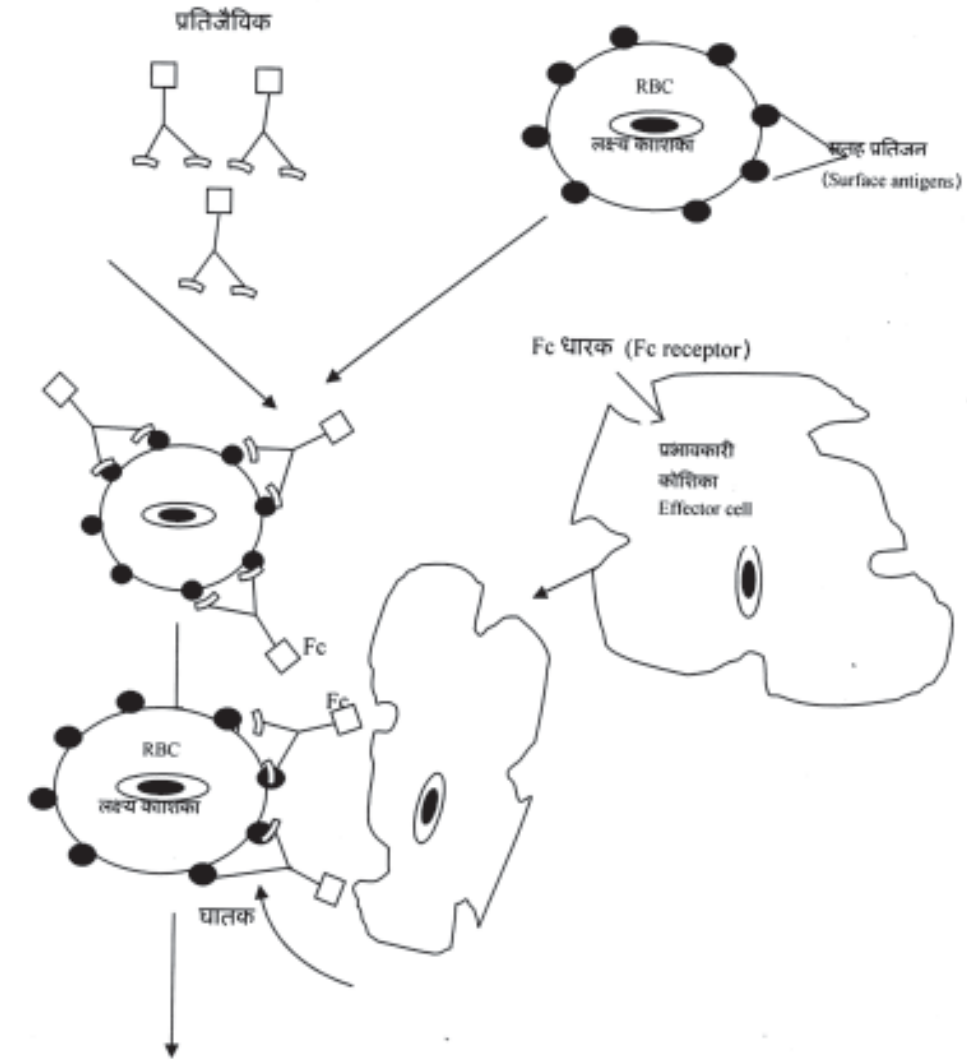

फेगोसायटोसिस अथवा लायसिस

II चित्र - 5. प्रकार- घघ अतिसंवेदनशीलता, सायटोटॉक्सिक की क्रियाविधि ।

सारणी -1. ABO रक्त समूह प्रणाली में प्रतिजनों एवं प्रतिजैविकों का वितरण।

रक्त समूह	प्रतिजन	प्रतिजैविक
A	**A**	एंटी- **B**
B	**B**	एंटी- **A**
AB	**AB**	कोई नहीं
O	कोई नहीं	एंटी-**A** एवं एंटी-**B** दोनों

करते हैं।

चूंकि यह अतिसंवेदनशीलता प्रतिजन-प्रतिजैविक सम्मिश्र द्वारा उत्पन्न होती है इसीलिए इसे प्रतिरक्षा सम्मिश्र आधारित अतिसंवेदनशीलता कहते है। इसमें सम्मिलित प्रतिजन, घुलनशील प्रतिजन होते हैं तथा इस क्रिया में IgG या IgM प्रकार के प्रतिजैविक भाग लेते हैं। इस प्रकार की अतिसंवेदनशीलता सूक्ष्मजीवियों से बार-बार संक्रमित होने अथवा बार-बार पर्यावरणीय कारकों के संपर्क में आने से होती है। प्रतिरक्षा सम्मिश्र आधारित अतिसंवेदनशीलता के कुछ उदाहरण हैं - आर्थस क्रिया (Arthus reaction), सीरम व्याधि (Serum sickness) इत्यादि।

प्रतिरक्षा सम्मिश्र आधारित अतिसंवेदनशीलता की क्रियाविधि :

जब शरीर में घुलनशील प्रतिजनों की अत्यधिक मात्रा प्रवेश करती है तब - कोशिकाएं अधिक मात्रा में IgG या IgM प्रकार के प्रतिजैविकों का निर्माण करती हैं। ये प्रतिजैविक, प्रतिजनों से जुड़कर प्रतिरक्षा सम्मिश्र (प्रतिजन-प्रतिरक्षा सम्मिश्र) बनाते हैं। ये सम्मिश्र सूक्ष्म रक्त कोशिकाओं से संलग्न होकर उनके परिपूरकों (Complements) में हलचल उत्पन्न करते हैं। परिपूरक 5(C3) और परिपूरक 5(C5) सक्रिय घटों एनाफायलोटाक्सिन (Anaphylotoxin) और कीमोटाक्सिन (Chemotoxin) का निर्माण करते हैं।

एनाफायलोटाक्सिन, अमीनों के उत्सर्जन हेतु मास्ट कोशिकाओं को उत्तेजित करते हैं। उत्सर्जित अमीन ऊतकों की पारगम्यता बढ़ाते हैं जिससे प्रतिरक्षा सम्मिश्र कोशिकाओं के आस-पास जमा हो जाते हैं।

कीमोटाक्सिन, पालीमार्फ और मास्ट कोशिकाओं को आकर्षित करते हैं तथा हाइड्रोलायटिक एंजाइमों (Hydrolytic enzymes) के उत्सर्जन द्वारा फेगोसायटोसिस की क्रिया

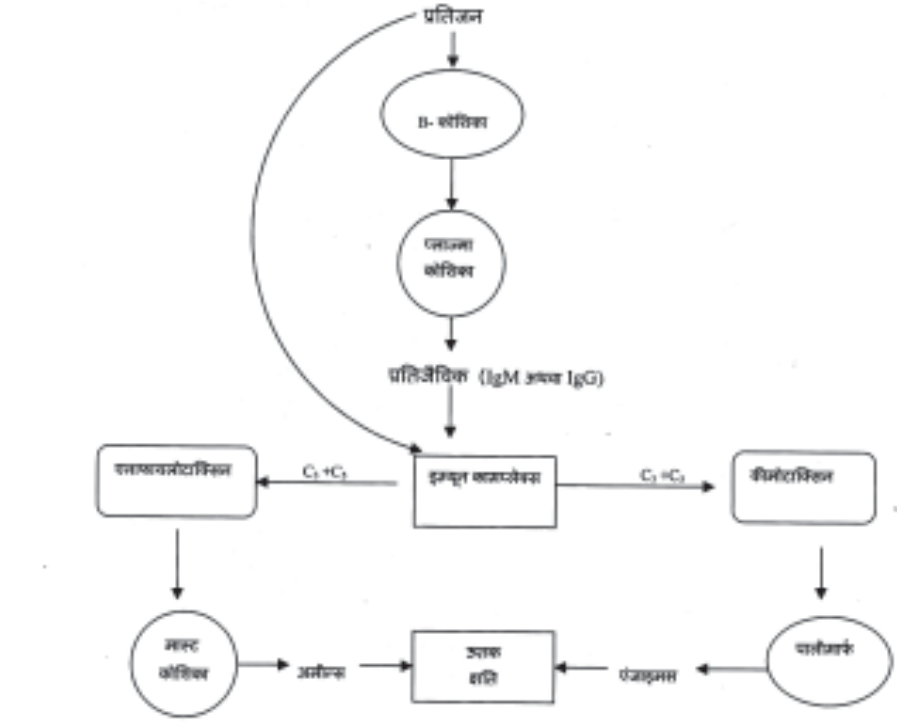

चित्र – 6. इम्यून काम्प्लेक्स आधारित अतिसंवेदनशीलता की क्रियाविधि का प्रदर्शन।

चित्र - 7. प्रकार - IV अतिसंवेदनशीलता की क्रियाविधि ।

जब किसी प्रतिजन (विषाणु जनित या जीवाणु जनित) के प्रति पहले से ही संवेदनशील - कोशिकाएं दुबारा उसी प्रकार के प्रतिजन के संपर्क आती हैं तो ये कोशिकाएं घुलनशील प्रोटीन लिम्फोकाइन (सायटोकाइन) का उत्सर्जन करती हैं। ये लिम्फोकाइन, मैक्रोफेजेज (macrophases) को इस प्रकार के जीवाणु जैसे कि ट्यूबरकल वैसिली को नष्ट करने के लिए सक्रिय बनाते हैं। इस प्रक्रिया में दैत्य कोशिकाओं (giant cells) एवं इपिथेलाइड कोशिकाओं जैसी उत्तेजक कोशिकाओं का निर्माण होता है जो प्रभावित व्यक्ति में अतिसंवेदनशीलता उत्पन्न करती हैं.

से ऊतकों की क्षतिग्रस्त करते हैं. इसकी क्रियाविधि को चित्र-6 में दिखाया गया है।

प्रकार - (IV) : कोशिका आधारित विलंब अतिसंवेदनशीलता

प्रकार - (IV) की अतिसंवेदनशीलता प्रतिजनों और संवेदनशील -T कोशिकाओं की परस्पर क्रिया के फलस्वरूप उत्पन्न होती है। इससे शरीर में उत्तेजक क्रियाएं होती हैं जिससे ऊतक क्षतिग्रस्त हो जाते हैं। चूंकि यह क्रिया - T कोशिकाओं के कारण होती है अतः इसे कोशिका आधारित अतिसंवेदनशीलता कहते हैं। शरीर पर इसके लक्षण 24 से 72 घंटों के बाद ही प्रकट होते हैं अतः यह एक प्रकार की विलंबित अतिसंवेदनशीलता है।

T- कोशिकाएं प्रतिजनों के संपर्क में आकर घुलनशील प्रोटीन लिम्फोकाइन (Lymphokine) का निर्माण करती हैं जो इस प्रकार की अतिसंवेदनशीलता के लिए उत्तरदायी होते हैं। प्रकार - IV अतिसंवेदनशीलता संक्रामक रोगकारकों जैसे कि जीवाणु, विषाणु, कवक एवं परजीवियों द्वारा होती हैं। यह कुछ रसायनों जैसे कि निकिल लवणों, नियोमायसिन क्रीम आदि के द्वारा भी होती है। इसके सामान्य उदाहरण हैं - ट्यूबरकुलिन क्रिया (Tuberculin reaction) और त्वचा रोग. अन्य उदाहरण हैं - कुष्ठ रोग (Leprosy), छोटी-माता (Small-pox), चेचक (Measles), हरपीज (Herpes), हिस्टोप्लेमोसिस (Histoplamosis) सिस्टोसोमियासिस (Schistosomiasis) इत्यादि।

प्रकार - IVअतिसंवेदनशीलता की क्रियाविधि :

जब किसी प्रतिजन (विषाणु जनित या जीवाणु जनित) के प्रति पहले से ही संवेदनशील - कोशिकाएं दुबारा उसी प्रकार के प्रतिजन के संपर्क आती हैं तो ये कोशिकाएं घुलनशील प्रोटीन लिम्फोकाइन (सायटोकाइन) का उत्सर्जन करती हैं। ये लिम्फोकाइन, मैक्रोफेजेज (macrophases) को इस प्रकार के जीवाणु जैसे कि ट्यूबरकल वैसिली को नष्ट करने के लिए सक्रिय बनाते हैं। इस प्रक्रिया में दैत्य कोशिकाओं (giant cells) एवं इपिथेलाइड कोशिकाओं जैसी उत्तेजक कोशिकाओं का निर्माण होता है जो प्रभावित व्यक्ति में अतिसंवेदनशीलता उत्पन्न करती हैं. (चित्र-7)

प्रकार - V उद्दीपित अतिसंवेदनशीलता :

प्रकार - V अतिसंवेदनशीलता, प्रतिजैविकों की कोशिका सतह पर स्थित प्रतिजनों के साथ क्रिया द्वारा उत्पन्न होती है। प्रकार -II अतिसंवेदनशीलता भी प्रतिजैविकों और कोशिका सतह पर स्थित प्रतिजनों की परस्पर क्रिया से होती है परंतु यहां उद्दीपन की जगह कोशिकाओं का क्षय होता है। कोशिकाओं में उद्दीपन की यह घटना ग्रेव्स बीमारी (Grave's diseas) या थायरोटाक्सिकोसिस (Thyrotoxicosis) में पायी जाती है। यह बीमारी थायराइड ग्रंथि की अतिसक्रियता के कारण होती है. इसमें IgG प्रकार के प्रतिजैविक, जिन्हें LAST(long acting thyroid stimulator) कहते हैं, जब थायराइड कोशिका की सतह पर स्थित प्रतिजनों से जुड़ते हैं तो ये थायराइड ग्रंथि को अधिक मात्रा में थायराक्सिन हारमोन उत्सर्जित करने के लिए प्रेरित करते हैं। थायराक्सिन हारमोन एक वृद्धि हारमोन है, जिसकी अत्यधिक मात्रा शरीर में उद्दीपन अतिसंवेदनशीलता प्रकट करती है।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि कुछ विशिष्ट परिस्थितियों में शरीर का सुरक्षात्मक प्रतिरक्षा तंत्र प्रतिजनों को नष्ट करने के लिए जिन उत्तेजन क्रियाओं को प्रकट करता है वे स्वयं के लिए भी घातक सिद्ध हो जाती हैं। प्रतिरक्षा तंत्र की ये क्रियाएं शरीर को किसी प्रतिजन के प्रति अतिसंवेदनशील बना देती हैं। जाने-अनजाने यदि वही प्रतिजन दुबारा संपर्क में आता है तो शरीर का प्रतिरक्षा तंत्र ही शरीर के लिए प्राणघातक बन जाता है। अतिसंवेदनशीलता एलर्जी का भयानक रूप है जिसे आसानी से नियंत्रित कर पाना मुश्किल होता है। अतः किसी प्रतिजन के प्रति संवेदनशील व्यक्ति के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि वह दुबारा ऐसे प्रतिजनों के संपर्क में न आने पाए।

डॉ. होमी भाभा हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता- 2009 में तृतीय पुरस्कार प्राप्त

फास्फोलिपिड - जीवन का आधार

- सुभाष चन्द्र -

पादप रसायन विभाग, राष्ट्रीय वनस्पति अनुसंधान संस्थान लखनऊ (उ.प्र.)

लिपिड वसा का ही एक रूप हैं जो हमारे शरीर के लिए प्रमुख पोषक तत्व हैं। इसमें विद्यमान अनेकों वसीय अम्ल जिन्हें मोनोकार्बोलिक अम्ल भी कहा जाता है। हमारे शरीर के निर्माण के साथ इसे शक्तिशाली तथा स्वस्थ रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। वास्तव में लिपिड अनेकों वसीय अम्लों तथा ग्लिसराल रसायनों का एक समूह है जिनमें वसीय अम्लों के अतिरिक्त ट्राई गिलसराइड, ग्लाइकोलिपिड, फास्फोलिपिड, ग्लिक्सरोफास्फोलिपिड, स्फिगोलिपिड, स्टिरोललिपिड, प्रीनोललिपिड आदि होते हैं। ये जल में कम तथा अध्रुवीय कार्बनिक घोलकों जैसे- एसीटोन आदि में अत्यधिक घुलनशील होते हैं। विगत वर्षों में वैज्ञानिकों द्वारा किये गये शोधों से ज्ञात हुआ है कि लिपिड समूह में विद्यमान 'फास्फोलिपिड' हमारे शारीरिक संरचना व पोषण हेतु अति उपयोगी हैं। प्रस्तुत लेख में फास्फोलिपिड के गुणों एवं उपयोगों की व्याख्या की गई है।

जीवन की सार्थकता अच्छे स्वास्थ्य से है और अच्छा स्वास्थ्य केवल संतुलित एवं पौष्टिक भोजन के साथ नियमित दिनचर्या से ही संभव है। साधारणतः हमारे भोजन में सैकड़ों रसायनिक तत्व विद्यमान रहते हैं परन्तु वास्तव में इनमें से कुछ तत्व हमारे शरीर को स्वस्थ एवं निरोगी रखने में अति महत्वपूर्ण निभाते हैं। इन्हीं तत्वों को पोषक तत्व कहा जाता हैं। जैसे- कार्बोहाइड्रेट, वसा, प्रोटीन, खनिज तत्व एवं विटामिन। इसके अतिरिक्त ऑक्सीजन एवं जल तो अति प्रमुख पोषक तत्व हैं। पोषक तत्वों को 2 वर्गो में विभाजित किया जा सकता है।

वृहद पोषक तत्व : हमारे शरीर को जिन पोषक तत्वों की आवश्यकता अधिक मात्रा में होती है उन्हें वृहद पोषक तत्व कहते हैं। जैसे- कार्बोहाइड्रेट, जल, वसा, ऑक्सीजन तथा प्रोटीन। इन्हें कार्बनिक पोषक तत्व भी कहते हैं।

सूक्ष्म पोषक तत्व : वे तत्व जिनकी आवश्यकता हमारे शरीर को कम मात्रा में होती है, सूक्ष्म पोषक तत्व कहलाते हैं जैसे- विटामिन एवं खनिज तत्व। इन्हें अकार्बनिक पोषक तत्व भी कहा जाता है।

लिपिड वसा का ही एक रूप है जो हमारे शरीर के लिए प्रमुख पोषक तत्व है। इसमें विद्यमान अनेकों वसीय अम्ल जिन्हें मोनोकार्बोलिक अम्ल भी कहा जाता है। हमारे शरीर के निर्माण के साथ इसे शक्तिशाली तथा स्वस्थ रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। वास्तव में लिपिड अनेकों वसीय अम्लों तथा ग्लिसराल रसायनों का एक समूह है, जिनमें वसीय अम्लों के अतिरिक्त ट्राई ग्लिसराइड, ग्लाइकोलिपिड, फास्फोलिपिड, ग्लिक्सरोफास्फोलिपिड, स्फिगोलिपिड, स्टिरोललिपिड, प्रीनोललिपिड आदि होते हैं। ये जल में कम तथा अध्रुवीय कार्बनिक घोलकों जैसे- एसीटोन आदि में अत्यधिक घुलनशील होते हैं।

वसा के गुण : वसा हमारे भोजन के प्रमुख पोषक तत्वों में से एक हैं। इसमें ग्लिसराल का भी एक अणु विद्यमान रहता हैं। हमारे शरीर में वसा के निम्नलिखित कार्य हैं -

1. कोशिका भित्तियों को स्वस्थ रखकर इनकी क्रिया को सामान्य बनाये रखना।
2. हमारे शरीर के अंगों पर भित्ति का निर्माण कर उन्हें थक्का रहित बनाना ।
3. शरीर के तापमान को एक समान बनाये रखना।
4. शरीर की त्वचा एवं बालों को स्वस्थ रखना ।
5. शरीर में स्वयं न बनने वाले वसाओं की पूर्ति करना।

साधारणतः शरीर में वसा की शक्ति 9 किलो कैलरी/ग्राम (37.7 kj/g) होती हैं।

हमारे शरीर की सभी जैविक भित्तियां (Biological membrane) जिनमें प्लाज्मा तथा अन्य सभी इन्द्रिय भित्तियां भी सम्मिलित हैं, में मुख्य रूप से फास्फोलिपिड एवं कोलेस्ट्राल होते हैं। इन्द्रिय एवं अन्य भित्तियों में फास्फोलिपिड एवं प्रोटीन कार्बोहाइड्रेट के साथ जुड़कर अनेकों ग्लाइकोप्रोटीन एवं ग्लाइकोपिपिड का निर्माण करते है, इसका वर्णन निम्नलिखित

दिये गये चित्र से पूर्णतः स्पष्ट होता है।

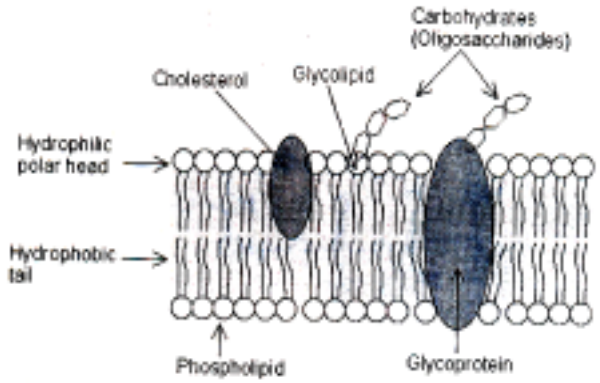

(प्लाज्मा भित्ति की संरचना चित्र)

विगत वर्षो में वैज्ञानिकों द्वारा किये गये अनेक शोधों से यह ज्ञात हुआ है कि लिपिड समूह में विद्यमान फास्फोलिपिड हमारे शरीर की संरचना से पोषण तक महत्वपूर्ण भूमिका निभाने के कारण अति उपयोगी हैं। प्रस्तुतः लेख फास्फोलिपिड में विद्यमान गुणों एवं उपयोगों पर आधारित हैं।

फास्फोलिपिड मूलत : वसा के संजात (derivative) होते हैं, जिनमें एक वसीय अम्ल को अनेक नाइट्रोजन युक्त अणुओं से फास्फेट समूह द्वारा स्थानान्तरित करते हैं। एक अन्य परिभाषा के अनुसार जिस लिपिड में एक अथवा एक से अधिक समूह उपस्थित रहते हैं, उन्हें फास्फोलिपिड कहते हैं। फास्फोलिपिड की प्रकृति द्विस्वभावी होती हैं। इसके एक अणु में एक जलरागी (Hydrophillic) ध्रुवीय शीर्ष समूह तथा एक जलविरागी (Hydrophobic) पुंछ होती है । ध्रुवीय समूह में एक या अधिक समूह होते हैं। जबकि जलविरागी पुंछ दो वसीय एकाइल बन्ध के द्वारा निर्मित होती हैं। जब फास्फोलिपिड के कई अणु जल में मिलते है तो द्विस्वभावी शीर्ष जल से अविमुख हो जाते हैं तथा जलविरागी पुंछ बलपूर्वक आपस में चिपक जाती हैं परिणाम स्वरूप एक द्विसतह का निर्माण होता हैं इसी कारण फास्फोलिपिड जैविक भित्ति निर्माण के लिए आदर्श यौगिक माने जाते हैं। फास्फोलिपिड को दो वर्गो में विभाजित किया जा सकता है। इन दोनों वर्गों के फास्फोलिपिड जैविक भित्ति में विद्यमान होते हैं।

1. वे फास्फोलिपिड जिनमें एक चितासहाल का पृष्ठफलक होता है - इन्हें फास्फोग्लिसराइड/ग्लिसरोफास्फोलिपिड कहते हैं तथा ये जैविक भित्ति में पाये जाते हैं। ये प्रकृति में पाये जाने वाले फास्फोलिपिडों का एक वर्ग है, जिसके अन्तर्गत फास्फोटिडाइल कोलीन (जिसे लिसीथिन भी कहते हैं)। फास्फोटिडाल सिरीन, फास्फोटिडाइल इनोसिटोल, फास्फेटिडाइल ग्लिसराल, कार्डियोलिपिन तथा फास्फोर्टिडाइल इथेनोलेमीन (सिफेलिन) आदि। इनमें प्रत्येक फास्फोलिपिड की संरचना में विविधता वन्ध की लंबाई में भिन्नता तथा वसीय अम्लों/ एस्टर समूहों की संतृप्तता अवस्था के कारण होती हैं। फास्फेर्टिडाइल इथेनोलेमीन (जिसे सिफेलिन भी

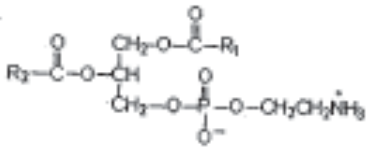

फास्फेटिडाइल कोलीन

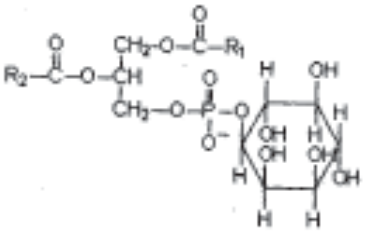

फास्फेटिडाइल इनोसिटोल

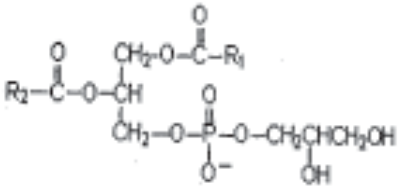

फास्फेटिडाइल ग्लिसराल

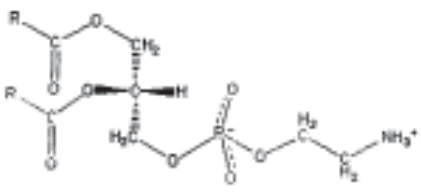

फास्फेटिडाइल इथेनोलेमीन (सिफेलिन)

कहते हैं.) तथा कुछ अन्य फास्फोलिपिडों की रासायनिक संरचना निम्नलिखित हैं।

2. वे फास्फोलिपिड जिनमें स्फिन्गोसीन विद्यमान रहता है इन्हें स्फिनगोमाइलिन कहते हैं। इनकी साधारण रसायनिक संरचना में एलाइड संयोजन के द्वारा एक वसीय अम्ल स्फिन्गोसिन से जुड़ा रहता हैं। इसके अणु की संरचना फास्फेटिडाल आधारित शीर्ष समूह से होती है तथा यह

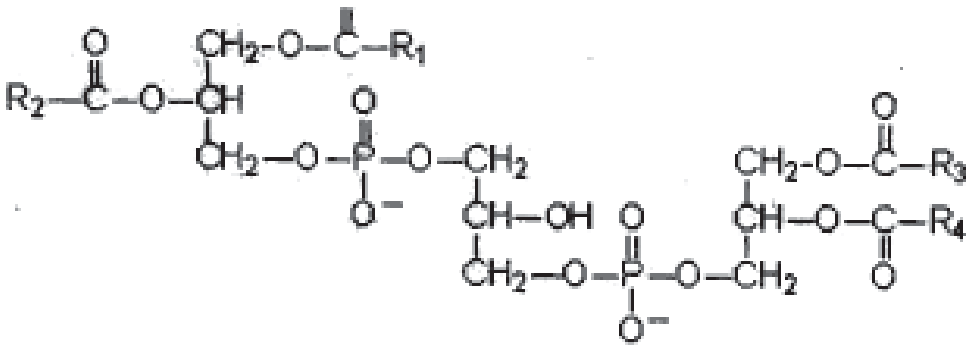

कार्डियोलिपिन (डाईफास्फेटिडाइल ग्लिसराल)

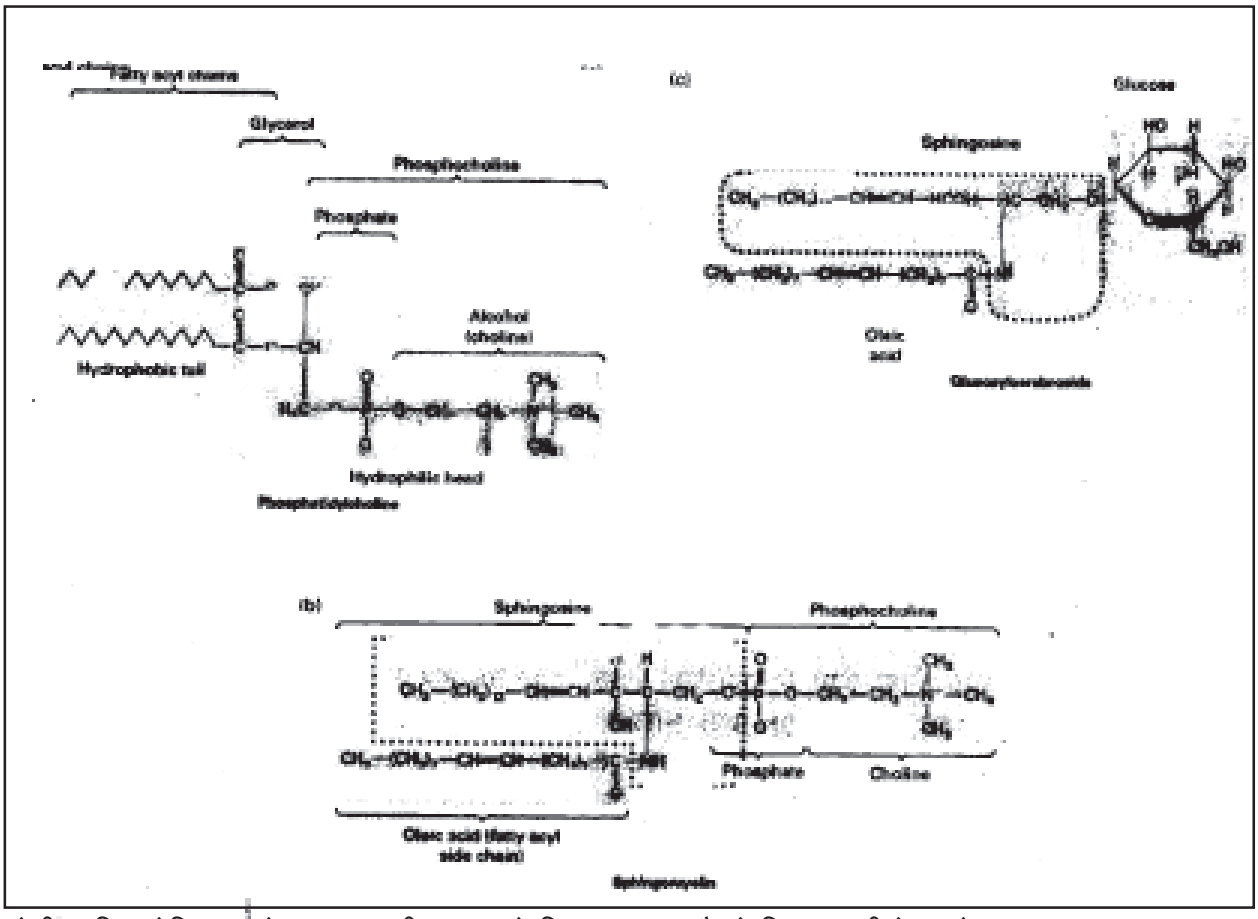

कोलीन, स्फिन्गोसिन एवं केवल एक वसीय अम्ल से मिलकर बनता है जो कि एक एमीनो एल्कोहल हैं। स्फिन्गोलिपिड की पार्श्व श्रृंखला स्फिगोसिन होती हैं ।

उपरोक्त वर्णित फास्फोलिपिडों में कुछ का विस्तृत वर्णन निम्नलिखित हैं :

1. स्फिन्गोलिपिड- जैसा कि उपरोक्त चित्र से स्पष्ट है यह फास्फोलिपिड कोलीन, फास्फेट, स्फिगोसीन एवं एक वसीय अम्ल के संयोग से बनता है तथा मूलतः तंत्रिका उत्तकों में पाया जाता हैं। यह द्विसतही लिपिड भित्तियों में कोलेस्ट्राल युक्त प्रभाव क्षेत्र बनाते हैं जो कि कुछ भित्तिक

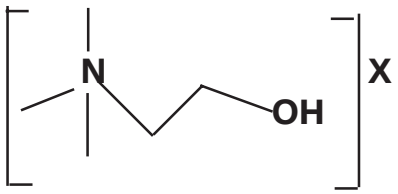

कोलीन

प्रोटीन के कार्य के लिए महत्वपूर्ण होते हैं।

2. कोलीन - यह फास्फेटिडाइल कोलीन के निर्माण में सहायक है तथा एसीटाइल कोलीन का पूर्वगामी है जो कि एक महत्वपूर्ण मस्तिष्क रसायन है एवं इसका सम्बंध स्मृति से होता हैं। यह पोषक तत्व अनेकों खाद्य एवं पेय पदार्थों जैसे अंडा, मछली, फलियां, गिरीदार फल, मांस, हरी सब्जियां तथा स्त्री स्तन के दूध में पाया जाता है। सामान्य रूप से हमें प्रतिदिन आहार में 300-900 मिलीग्राम कोलीन प्राप्त होती हैं। कोलीन को और अधिक महत्व 1998 में मिला जब राष्ट्रीय विज्ञान एकादमी ने इसे एक आवश्यक पोषक तत्व घोषित किया। इसके पूर्व कोलीन के बारे में यह धारणा थी कि मानव शरीर आवश्यकता के अनुरूप स्वयं कोलीन का उत्पादन कर लेता है। उत्तरी कैरोलिना विश्वविद्यालय में पोषण विभाग के वैज्ञानिक डा. स्टीवन जिसेल को अपने एक शोध के परिणामस्वरूप यह ज्ञात हुआ कि कोलीन की कम मात्रा वाले भोजन से शरीर को आवश्यक मात्रा में इसकी पूर्ति नहीं हो पाती है (जीसेल.1991)। चूहों पर किये गये अन्य प्रयोगों से यह सिद्ध हुआ कि गर्भाधान के पश्चात् भोजन में कोलीन की संतुलित मात्रा से उनके भ्रूण में स्मृति एवं सीखने की क्षमता में वृद्धि होती हैं (विलियम्स 1998)। डा. जिसेल के अनुसार प्रत्येक गर्भवती महिला के भोजन में प्रतिदिन कम से कम 450 मिलीग्राम कोलीन की मात्रा होना अति आवश्यक हैं।

3. फास्फेटिडाइल कोलीन - इसे लिथीसिन भी कहते है

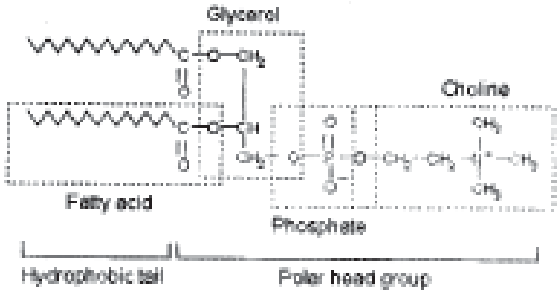

फास्फेटिडाइल कोलीन

यह हमारे शरीर की प्रत्येक कोशिका के लिए अति महत्वपूर्ण रसायन हैं। हमारे मस्तिष्क में पाये जाने वाले कुल फास्फोलिपिडों में 30 प्रतिशत केवल फास्फेटिडाइल कोलीन तथा 10 प्रतिशत फास्फेटिडाइल सेरीन होता हैं। भोजन में परिवर्तन से मस्तिष्क के फास्फोलिपिडों में निहित वसीय अम्लों की मात्रा को कम/अधिक किया जा सकता हैं। उदाहरण के लिए यदि हमारे भोजन में समुद्री खाद्य पदार्थ हैं तो निश्चित रूप से न्यूरॉन की कोशिका भित्ति का निर्माण करने वाले फास्फोलिपिड में DHA (लंबी श्रृंखला) के बहुसंतृप्त वसीय अम्ल पर्याप्त मात्रा में होंगे। इसके अतिरिक्त फास्फोलिपिड में वसीय अम्लों का संयोजन हमारी आयु एवं रोगों को प्रभावित करता हैं। ज्यों-ज्यों हमारी आयु बढ़ती जाती है शरीर में DHA की कमी हो जाती हैं। परिणामस्वरूप यह स्नायुतंत्र की सामान्य क्रियाशीलता को बाधित करता हैं। इसके अतिरिक्त उसके साथ हमारे मस्तिष्क की कोशिका भित्तियों में फास्फेटिडाइल कोलीन का स्तर निरन्तर कम होता जाता हैं। इसका स्मृति के लिए किये गये प्रयोगों में अत्यधिक सकारात्मक परिणाम प्राप्त हुआ (सोरगेडज, 1987, लेड, 1993)। सामान्य रूप से मनुष्य को प्रतिदिन भोजन में 3-6 ग्राम लिसीथिन अंडे, सोयाबीन आदि के माध्यम से प्राप्त होती हैं। परन्तु फल, सब्जी एवं अनाजों में लिथीसिन की मात्रा कम होती हैं।

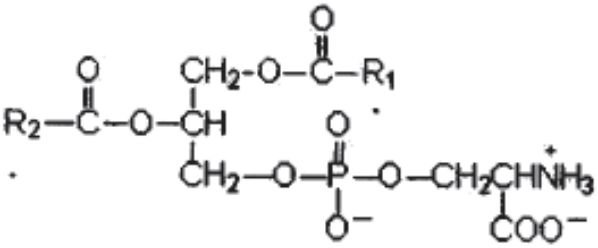

फास्फेटिडाइल सेरीन

इसकी रासायनिक संरचना निम्नलिखित हैं।

4. **फास्फेटिडाइल सेरीन** - यह भी एक महत्वपूर्ण फास्फोलिपिड है तथा हमारे शरीर के लिए उपयोगी पोषक तत्व हैं। इसका प्रमुख प्राकृतिक श्रोत बोबीन का मस्तिष्क है परन्तु व्यवसायिक स्तर पर इसका उत्पादन सोयाबीन के बीज से किया जाता हैं। पश्चिमी देशों में तो आजकल सोयाबीन से फास्फोटडाइल सेरीन के सैकड़ों उत्पाद तैयार करके इनका उपयोग किया जा रहा हैं। अमेरिका में खाद्य एवं औषधि प्रशासन ने इसके बारे में कहा है कि इसके सेवन से प्रौढ़ावस्था में डिमेन्टिया रोग का खतरा कम होने के साथ वृद्धावस्था में ज्ञानात्मक दुष्क्रिया का भी डर नहीं रहता हैं। फास्फेटिडाइल सेरीन के त्वरित पुर्नलाभ में मांसपेशियों की रोगों से सुरक्षा, सामान्य स्वास्थ्यवर्धक तथा वे लोग जो व्यायाम के लिए साइकिल चलाना, वजन उठाना, लंबी दूरी की दौड़ आदि करते हैं, के लिए अत्यन्त लाभदायक हैं। हाल में हुए अनुसंधानों से यह ज्ञात हुआ है कि फास्फोलिडाल सेरीन युवा लोगों में उत्पन्न

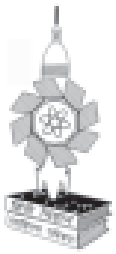

मानसिक तनाव के समय मन स्थिति को सुदृढ़ करने के साथ गोल्फ के खिलाड़ियों में खेल के समय उनकी एकाग्रता में वृद्धि के अतिरिक्त उन्हें तनाव मुक्त भी करता हैं। इसकी प्रतिशत मात्रा दुग्ध पदार्थ एवं सब्जियों में मांस की अपेक्षा कम होती हैं। इसकी रसायनिक संरचना निम्नलिखित है। फास्फोलिटड़ाइन सेरीन के श्रोतों में उनकी मात्रा का विवरण नीचे की तालिका में किया गया है।

तालिका

श्रोत	फास्फेटिडाइल सेरीन की मात्रा मिलीग्राम / 100 ग्राम
बोबीन मस्तिष्क	713
अटलांटिक मैकरेल (बांगड़ा)	480
चिकन हृदय	414
अटलांटिक हिलसा (हेरिंग)	360
सर्पमीन	335
सड़े गले मांस	305
सुअर की तिल्ली	239
सुअर का गुर्दा	218
चिकन पैर	134
चिकन की कलेजी	123
सफेद बीन (फली)	107
बछड़े का मांस	72
गो मांस	69
सुअर का मांस	57
सुअर का जिगर	50
'के' मछली	40
जौ	20
चावल	3
गाय का दूध	1
आलू	1

फास्फोलिपिड के सामान्य गुण एवं उपयोग -

फास्फोलिपिड हमारे शरीर की जैविक प्रणाली में अनेक प्रकार से क्रिया करते हैं जैसे- ईधन के रूप में, भित्ति की सरंचना तल के निर्माण में, संकेत अभिकर्ता के रूप में तथा सतह निर्माता के रूप में। उदाहरण के लिए फुफफुसीय सतह प्राथमिक डिपालमीटोल, फास्फेटिडाइल कोलीन लिपिडों एवं प्रोटीनों का मिश्रण होता है जो कि अन्ततः फेफड़े में विद्यमान तरल धारियों को नियंत्रित करने के साथ श्वसन क्रिया के समय उपरोक्त तरल धारियों का संकुचन एवं विस्तार भी करता हैं। इसके अतिरिक्त फास्फोलिपिड कोशिका भित्ति के प्रमुख लिपिड घटक होने के कारण कोशिकाओं के मध्य रचनात्मक अखण्डता एवं वातावरण को बनाये रखने के साथ कोशिका में निहित कक्षों की सीमायें भी बनाये रखता हैं।

जैसा कि पूर्व में कहा जा चुका है फास्फोलिपिड लिपिड के मिश्रण से बनता हैं। हमारे शरीर में फास्फोटिडाइल कोलीन एवं फॉस्फोटिडाइल सेरीन दो ऐसे फास्फोलिपिड हैं जिनके बिना तो हमारी एक भी कोशिका सही क्रिया नहीं कर सकती। आमेगा-3-वसीय अम्ल भी एक फास्फोलिपिड है जो हमारे मस्तिष्क के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। मस्तिष्क में विद्यमान फास्फोलिपिड में मुख्यतः दो वसीय अम्ल DHN एवं ऐरोचिडोनिक अम्ल होते हैं। ओमेगा-3-वसीय अम्ल तो हमारे शरीर की प्रत्येक कोशिका में अधिक सान्द्रता में पाये जाते हैं। यह मस्तिष्क की कोशिकाओं के संचार एवं ग्राही के प्रभाव को अच्छी तरह नियंत्रित भी करते हैं। प्रत्येक मस्तिष्क कोशिका एक पतली भित्ति से बनी होती है। इन स्वस्थ कोशिका भित्तियों के अभाव में हमारी मानसिक क्रिया कुप्रभावित होने के कारण हमें पूर्ण स्मृति नहीं हो सकती हैं।

विभिन्न वैज्ञानिक परीक्षणों से यह ज्ञात हुआ है कि ओमेगा-3-फास्फोलिपिड हमारे शरीर के अस्थि रोगों जैसे- गठियॉ, जोड़ों का दर्द, पीठ एवं कमर का दर्द आदि रोगों में अत्यंत लाभदायक है जो कि मुख्यतः उपास्थि अपचय (Cartilage catabolism) एवं अस्थि छय के कारण होते हैं। उपरोक्त रोगों का एक प्रमुख कारण हमारे भोजन में पोषक तत्वों की कमी भी हैं। अनुसंधानों से यह सिद्ध हो चुका है कि ओमेगा-3-फास्फोलिपिड जोड़ों के दर्द को कम करके, अस्थियों का रूखेपन व कठोरपन को कम करने में पूर्णतः सक्षम हैं। यह हमारे शरीर की अस्थियों एवं जोड़ों को एक विशेष प्रक्रिया द्वारा स्वस्थ रखते हैं। शरीर में अधिकतर अस्थियों की उत्पत्ति एवं वृद्धि बचपन से किशोरावस्था तक तीव्र गति से होती है। ओमेगा-3-फास्फोलिपिड उपरोक्त अस्थियों की उत्पत्ति वृद्धि एवं अस्थि पुर्ननिर्माण चक्र में अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। यह उपास्थि संधियों के अवक्रमण की अवधि की वृद्धि में भी सहायक हैं। शरीर में सूजन होने का कारण सूजन पैदा करने वाली कोशिकाओं की उत्पत्ति हैं। कोशिका भित्ति में ओमेगा-3-फास्फोलिपिड के होने से उपरोक्त कोशिकाओं की उत्पत्ति में कमी होने के साथ शरीर की अन्य कोशिकाओं एवं उत्तकों को अनेकों रोगों से सुरक्षित रहते हैं। इसके

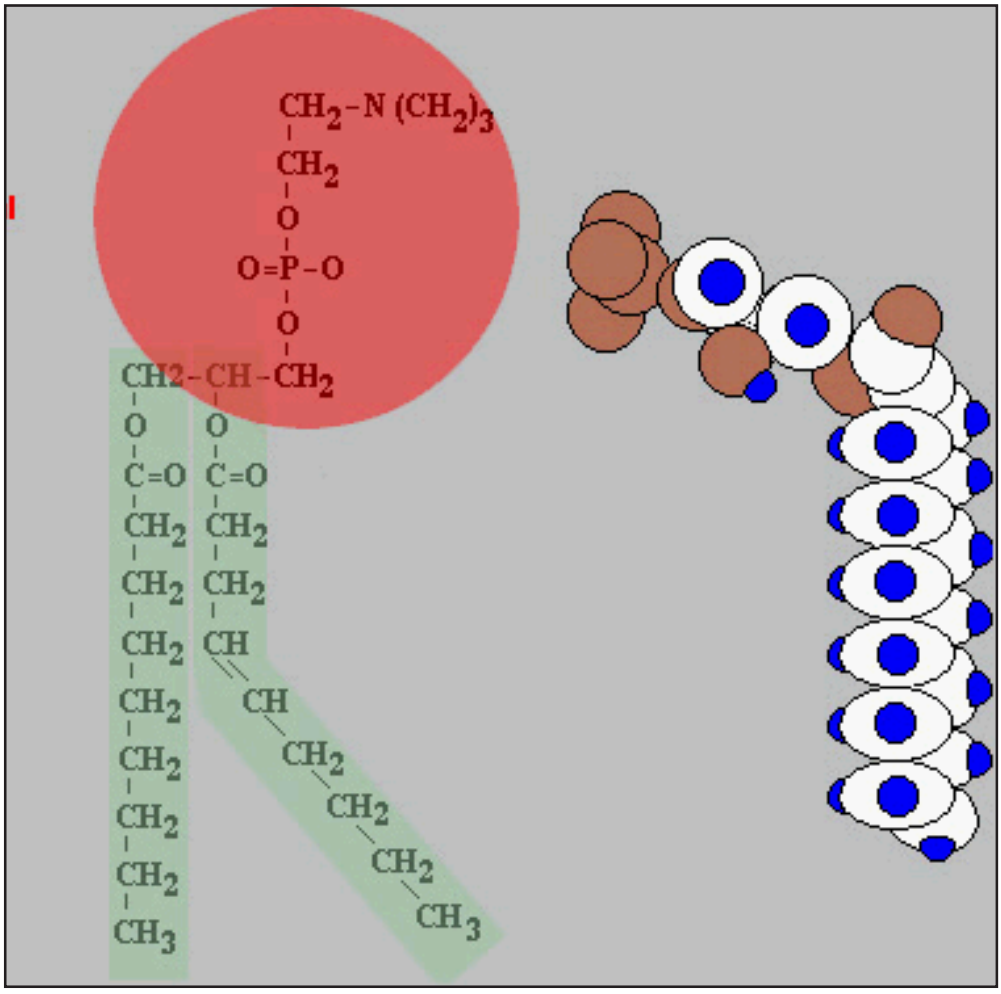

आतिरिक्त यह शरीर में विभिन्न क्रियाओं के फलस्वरूप होने वाली अस्थि उपापचय, जोड़ो एवं हड्डियों में दर्द की प्रक्रियाओं, अस्थि अवक्रमण एवं स्थानीय सूजन को भी समाप्त कर देते है।

फास्फोलिपिड का हमारे मस्तिष्क में अनेक रूपों में अत्यधिक महत्व है। यह केवल, कोशिकाओं में पहुंचने एवं उनसे बाहर निकलने वाले पोषक एवं खनिज तत्वों की गणना ही नहीं रखते बल्कि द्रमाशम की वृद्धि को प्रोत्साहित करने के साथ ग्राही के आकार को प्रभावित कर मस्तिष्क की कोशिकाओं में संचार में वृद्धि करती हैं। शोधों से यह भी ज्ञात हुआ है भोजन में फास्फोलिपिडों की मात्रा कम होने से सीखने व स्मृति की क्षमता कम हो जाती हैं।

फास्फोलिपिड के प्रमुख प्राकृतिक श्रोत अंडा, पशुओं का मांस, समुद्री जीवों का मांस कुछ विशेष कवक एवं सोयाबीन आदि हैं। आजकल लिसीथिन का उपयोग पायसी कारक के रूप में प्रचुर मात्रा में किया जा रहा हैं। हमारे शरीर में वसा को अनेक भागों में विभाजित करने में इसकी प्रमुख भूमिका होती हैं। पिछले कई दशकों से लिसीथिन का उपयोग उच्च कोलेस्ट्राल वाले रोगियों के लिए किया जा रहा हैं। यह हृदय की दीवारों में वसा एवं कोलेस्ट्राल को इकट्ठा होने से रोककर हृदय को सुरक्षा प्रदान करता है। यकृत को सूत्रण रोग **(cirrhosis)** से बचाने के लिए भोजन के संपूरक के रूप में भी इसका उपयोग किया जाता है। इसके उपयोग से यकृत में वसा का संचय भी नहीं हो पाता। उपरोक्त कारणों से ही यह शारीरिक भार कम करने के लिए अति महत्वपूर्ण माना जाता है। लिसीथिन में विद्यमान फास्फोटिडाल कोलीन इसका एक प्रमुख घटक है तथा इसका औषधीय प्रभाव भी है। यह कोशिका के चारों ओर विद्यमान रहता है। इसलिए यदि भोजन अथवा अन्य संपूरक के साथ यह शरीर में पहुंचती हैं तो शरीर के द्वारा कोलीन में विघटित हो जाती हैं जो कि हमारे मस्तिष्क की सामान्य क्रिया के लिए अति आवश्यक हैं। स्त्रियों में जनन स्वास्थ्य के लिए लिसीथिन की क्रियाओं पर अनेकों अनुसंधान किये गये जिससे यह ज्ञात हुआ कि गर्भ के समय इसका उपयोग गर्भ को स्वस्थ रखने के साथ भ्रूण विकास में भी सहयोगी हैं। इसके अतिरिक्त यह भी पाया गया कि यह स्तन की कोशिकाओं को स्वस्थ तथा उनकी सुचारू क्रिया में भी सहायक हैं। इसी प्रकार पुरूषों के वीर्य में लिसीथिन अधिक मात्रा में विद्यमान रहती है। भोजन में लिसीथिन की मात्रा पर्याप्त होने से ग्रन्थि स्राव की मात्रा में वृद्धि के परिणामस्वरूप निकलने वाले वीर्य की मात्रा भी बढ़ जाती है।

उपरोक्त साक्ष्यों से यह पूर्णतः स्पष्ट हो जाता है कि फास्फोलिपिडों का महत्व एवं उपयोगिता निश्चित रूप से अतुलनीय हैं यह हमारे शरीर के लिए महत्वपूर्ण एवं विभिन्न रोगों से बचाने के लिए अत्यंत उपयोगी हैं।

डॉ. होमी भाभा हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता- 2009 में प्रोत्साहन पुरस्कार प्राप्त

वनस्पति उद्यान और जैवविविधता : कुछ नये प्रावधान

- नरेश चंद्र तिवारी -

तकनीकी अधिकारी - वनस्पति उद्यान, राष्ट्रीय वनस्पति अनुसंधान संस्थान, लखनऊ-226001

संयुक्त राष्ट्र के तत्वावधान में जून १९९२ में ब्राजील के एक शहर 'रिया डी जनेरिया' में 'पर्यावरण एवं विकास पर संवाद' (कांफ्रेंस ऑन एनवायरमेंट एण्ड डेवेलपमेंट) का आयोजन किया गया था जो 'पृथ्वी सम्मेलन' (अर्थ समिट) के नाम से प्रसिद्ध है। यह पहला अवसर था जब बड़ी संख्या में अनेक देशों के राष्ट्राध्यक्ष एक स्थान पर एकत्र हुए और 'पर्यावरण तथा विकास' पर गंभीरतापूर्वक परिचर्चा की। इस अवसर पर प्रख्यात पर्यावरणविदो, वैज्ञानिकों तथा चिंतकों ने भ ी स्वतंत्र रूप से अपने विचार व्यक्त किए।

संयुक्त राष्ट्र के तत्वावधान में जून 1992 में ब्राजील के एक शहर 'रिया डी जनेरिया' में 'पर्यावरण एवं विकास पर संवाद' (कांफ्रेंस ऑन एनवायरमेंट एण्ड डेवेलपमेंट) का आयोजन किया गया था जो 'पृथ्वी सम्मेलन' (अर्थ समिट) के नाम से प्रसिद्ध है। यह पहला अवसर था जब बड़ी संख्या में अनेक देशों के राष्ट्राध्यक्ष एक स्थान पर एकत्र हुए और 'पर्यावरण तथा विकास' पर गंभीरतापूर्वक परिचर्चा की। इस अवसर पर प्रख्यात पर्यावरणविदों, वैज्ञानिकों तथा चिंतकों ने भी स्वतंत्र रूप से अपने विचार व्यक्त किए।

इस सम्मेलन का मुख्य उद्देश्य एक ऐसी प्रभावशाली रणनीति तैयार करना था जिसके माध्यम से क्षरित हो रहे पर्यावरण को बचाया जा सके और संपोषणीय विकास किया जा सके।

इस पृथ्वी सम्मेलन का मुख्य मुद्दा था 'जैव विविधता पर समागम' (कन्वेंशन ऑन बायोलॉजिकल डाइवर्सिटी, सीबीडी)। इस पृथ्वी सम्मेलन में पारित प्रस्ताव पर भारत सहित 153 देशों ने हस्ताक्षर किए। बाद में अनेक देशों ने इस सम्मेलन के प्रस्तावों का समर्थन किया जिसके कारण जैव विविधता पर कुछ नियम व कानून एक विस्तृत प्रस्ताव के रूप में सामने आया। यह प्रस्ताव 29 दिसंबर, 1993 को अधिकारित रूप से स्वीकार किया गया जिसे 190 से अधिक देशों ने मान्यता प्रदान की। इस प्रस्ताव में लगभग 42 अनुच्छेद है जिनमें से कई अनुच्छेदों का संबंध जैव विविधता पर समागम (सीबीडी) से है। इस सम्मेलन में एक विचार यह उभरकर आया कि विश्व के हजारों वनस्पति उद्यान परस्पर सहयोग से जैव विविधता के संरक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकते हैं। ये वनस्पति उद्यान दुर्लभ, स्थानिक, संकटग्रस्त तथा संकटापन्न पौधों के संरक्षण तथा प्रसार में उल्लेखनीय कार्य कर सकते हैं। इसका कारण है कि वनस्पति उद्यानों में अनुभवी वैज्ञानिक तथा तकनीकी अधिकारी होते हैं और वहां उच्चस्तरीय शोधकार्य करने की सुविधाएं उपलब्ध होती है। ये वनस्पति उद्यान जनजागरण का कार्य करने के लिए तकनीकी रूप से साधन संपन्न होते हैं।

जैव विविधता पर समागम के उद्देश्य

जैवविविधता का संरक्षण इसके विविध घटकों का संपोषणीय उपयोग

आनुवंशिक श्रोतों (पौध, बीज, कंद, प्रकंद और बीजाणु) के सही उपयोग से प्राप्त लाभांशों का पारदर्शी व समान वितरण। इसमें आनुवंशिक श्रोतो का मूल्यांकन, तकनीकी का हस्तांतरण तथा उचित आर्थिक सहयोग सम्मिलित है।

वनस्पति उद्यानों से संबंधित मुख्य अनुच्छेद

लगभग 42 अनुच्छेदों में से अनेक अनुच्छेदों का संबंध जैविक स्रोतों से है। इन अनुच्छेदों का विश्व के वनस्पति उद्यानों पर सीधा प्रभाव पड़ेगा तथा उनकी व्यावहारिकता भी प्रभावित होगी। यह प्रभाव निम्न प्रकार से हो सकते हैं

जैवविविधता से संबंधित अनुच्छेद

सी बी डी - 1 के अनुच्छेद

अनुच्छेद - 10 - जैव विविधता के विभिन्न अंगों का संपोषणीय उपयोग।

बागवानी, वानिकी तथा कृषि के लिए महत्वपूर्ण व्यावसायिक प्रजातियों की पहचान तथा उनका विकास।

अनुच्छेद - 12 - अनुसंधान एवं प्रशिक्षण, पारिस्थितिकी, लोकवनस्पति, बागवानी व पादप वर्गिकी आदि पर शोध कार्य।

सी बी डी -2 के अनुच्छेद

अनुच्छेद - 6 - संरक्षण और संपोषणीय उपयोग के सामान्य उपाय

जैवविविधता के संरक्षण तथा संपोषणीय उपयोग के लिए राष्ट्रीय स्तर पर प्रभावशाली रणनीति का विकास तथा उसका प्रसार।

अनुच्छेद - 7- पहचान एवं देखभाल पादम वर्गिकी, व्यावसायिक पौधों की पहचान, उनका सूचीकरण व सर्वेक्षण आदि मुख्य कार्य जिन्हें वनस्पति उद्यानों द्वारा प्रमुखता से लिया जाना है।

सी बी डी -3 के अनुच्छेद

अनुच्छेद -8 इन सीटू कन्जरवेशन - संरक्षित क्षेत्रों, वासस्थानों का पुनर्स्थापन, पौध प्रजातियों की उपलब्धता बनाए रखने के लिए विकास की रणनीति तय करना, रूपरेखा तैयार करना, पौधों की देखभाल करना तथा इनकी व्यवस्था के लिए वनस्पति उद्यानों को सदैव तैयार रहना तथा योगदान देना।

अनुच्छेद - 9 : एक्स सीटू कन्जरवेशन - पौधों का संग्रह जिसमें बीज बैंक, फील्ड बीज बैंक तथा उत्तक संग्रह आदि शामिल है, का विकास तथा उनकी व्यवस्था.

सी बी डी - 4 के अनुच्छेद

अनुच्छेद - 13 : जनशिक्षा एवं जनजागरण - पर्यावरण के महत्व तथा जैव विविधता के क्षरण के प्रति लोगों को जागरूक करने के लिए जन जागरण कार्यक्रमों का विकास.

अनुच्छेद - 15 : साधन और स्रोत - वर्तमान में वनस्पति उद्यानों के पास अनुमानत 40 लाख सूचीबद्ध उपसाधन (पौध सामग्री) उपलब्ध है जो जैविक संसाधनों का एक विशाल भंडार उपलब्ध कराते हैं जिनसे प्राप्त लाभांश के वे भागीदार हो सकते हैं.

सी.बी.डी.- 5 के अनुच्छेद

अनुच्छेद-17 : सूचनाओं का आदान-प्रदान - जननद्रव्य (पौध सामग्री) का संग्रह, अनुसंधान तथा पारस्परिक लाभों के पहलुओं से संबंधित सूचनाओं का आदान-प्रदान।

अनुच्छेद - 18 : तकनीकी एवं वैज्ञानिक सहयोग - वनस्पति उद्यानों के पास तकनीकी तथा वैज्ञानिक पृष्ठभूमि भी होनी चाहिए जिससे वे दूसरे वनस्पति उद्यानों के साथ मिलकर संयुक्त रूप से अनुसंधान कर सकें तथा अपने शोधकर्मियों की अदला-बदली भी कर सकें।

वनस्पति उद्यानों पर प्रभाव तथा व्यावहारिकता-

1. वनस्पति उद्यान ऐसे संस्थान या पादप केंद्र हैं जहां अनुसंधान, पादप संरक्षण, प्रदर्शन तथा शिक्षण के लिए साधन उपलब्ध होते हैं। साथ ही वहां उपलब्ध जीवित पौधों पर प्रमाणित, लिखित सामग्री भी मौजूद होती है। विश्व के

153 देशों में लगभग 2178 वनस्पति उद्यान है जहां प्रकृति से बाहर बड़ी संख्या में जीवित पौधे संरक्षित हैं।

अनुमान है कि ये वनस्पति उद्यान 61. 3 लाख सूचीबद्ध जीवित पौधों की देखरेख कर रहे हैं जिनमें 80,000 पादप प्रजातियाँ हैं। साथ ही 94.2 करोड़ हर्बेरियम स्पेसिमेन भी मौजूद हैं।

वनस्पति उद्यानों पर प्रभाव तथा व्यावहारिकता -

2. सी.बी.डी. के पूर्व सभी वनस्पति उद्यान विश्व स्तर पर 'इंटरनेशनल इण्डेक्स सेमिनम' (सीड लिस्ट/बीज की सूची) के माध्यम से बिना किसी विशेष सावधानी व नियम-कानून के बीजों तथा अन्य पादप सामग्री के आदान-प्रदान के लिए स्वतंत्र थे। इस पारस्परिक आदान-प्रदान का मुख्य उद्देश्य था अपने वनस्पति उद्यानों में पौधों (जनन द्रव्य) के संग्रह में वृद्धि करना, पादप संरक्षण और व्यापारिक लाभ के

लिए इनका उपयोग करना। विश्व के वनस्पति उद्यान यह समस्त कार्य निःशुल्क और पारस्परिक सहयोग के आधार पर कर रहे थे।

अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर अधिकांश वनस्पति उद्यान, वानस्पतिक अनुसंधान संस्थान तथा विश्वविद्यालयों के वनस्पति विभाग अपने वनस्पति उद्यान में उपलब्ध पौध सामग्री, मुख्यतः बीजों की सूची प्रतिवर्ष तैयार करते हैं और इसे एक पुस्तिका के रूप में विश्व स्तर पर दूसरे वनस्पति उद्यानों को निःशुल्क भेज देते हैं। इस सूची को लैटिन भाषा में 'इंडेक्स सेमिनम' (बीजो की सूची) कहते है. इस 'इंडेक्स सेमिनम' या 'सीडलिस्ट' के आधार पर कोई भी दूसरा वनस्पति उद्यान पारस्परिक आदान-प्रदान के आधार पर दूसरे देश के वनस्पति उद्यान से बीजों को निःशुल्क प्राप्त कर सकता है तथा इन बीजों से पौधे तैयार करके अपने वनस्पति उद्यान की जैव-संपदा में वृद्धि कर सकता है।

अब सी बी डी के पश्चात परिदृश्य पूरी तरह बदल गया है। अब इसमें जैविक स्रोतो की सूचीबद्धता, आदान-प्रदान तथा लाभांश की भागीदारी भी जुड़ गए हैं। अब पौध सामग्री या बीज उस देश की संपत्ति माने जाएंगे जहां के वनस्पति उद्यान से इसे प्राप्त किया गया है। यह कानूनी हक इससे पूर्व नहीं था। इस तरह प्रदाता वनस्पति, उद्यान का हक दी गई पौध सामग्री पर बना रहेगा।

वनस्पति उद्यानों पर प्रभाव एवं व्यावहारिकता-

3. आरंभ में ऐसी संभावना व्यक्त की जा रही थी कि सी बी डी के प्रावधान विश्व के वनस्पति उद्यानों पर बहुत कम प्रभाव डालेंगे। वनस्पति उद्यानों को भी आशंका थी कि सी बी डी के प्रभाव भविष्य में उनके प्रतिदिन के कार्यों को प्रभावित करेंगे।

यह भी आशंका थी कि क्या सी बी डी के प्रावधान वैज्ञानिक तथा शोध कार्यों के लिए जननद्रव्य के निःशुल्क आदान-प्रदान या पारस्परिक सहयोग के आधार पर पौध सामग्री के आदान-प्रदान को सीमित कर देंगे या रोक लगाएंगे अथवा ये प्रस्ताव उत्साहवर्धक सिद्ध होंगे और नई संभावनाओं को जन्म देंगे।

वनस्पति उद्यानों पर प्रभाव एवं व्यावहारिकता

4. एक दृष्टि से सी बी डी दूसरे अंतर्राष्ट्रीय समागमों से भिन्न हैं। उदाहरणार्थ इसके प्रावधान एक लक्ष्य निर्धारित करते हैं बजाय इसके कि वे दुनिया के देशों को वैज्ञानिक लक्ष्यों तथा उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए दबाव डाले या उन्हें बाध्य करें। अतः इन प्रावधानों में ऐसी कोई सूची नहीं है जिसमें पौधों के वास स्थानों व पौध प्रजातियों का नाम हो और उन्हें संरक्षण देने को कहा गया हो जैसे - कन्वेंशन ऑन इंटरनेशनल ट्रेड इन एनडेंजर्ड स्पीशीज ऑन फ्लोरा एंड फौना (सीआईटीईएस) में।

यह समागम किसी भी देश या प्रशासन को पूरी स्वतंत्रता प्रदान करता है कि वे कैसे इन प्रावधान को व्यवहार में लाएंगे। जैव विविधता का संरक्षण एक महान लक्ष्य है लेकिन सीबीडी अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर स्वीकृत एक ऐसा फ्रेम वर्क प्रस्तुत करता है जिसके आधार पर कोई भी देश समागम के प्रावधानों को व्यवहार में ला सकता है।

वनस्पति उद्यानों पर प्रभाव एवं व्यावहारिकता -

5. सोलहवें इंटरनेशनल बोटेनिकल कांग्रेस (सेंट लुईस 1999) तथा ग्रान कनेरिया डिक्लेरेशन (2000) के प्रस्तावों के अनुसार सीबीडी के माध्यम से अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर पौधों के संरक्षण के लिए एक व्यूह रचना (ग्लोबल स्ट्रेटेजी फॉर प्लाण्ट कंजरवेशन, डीएसपीसी) तैयार करने की आवश्यकता बताई गई थी। प्रस्तावों में जिन लक्ष्यों का उल्लेख था तथा जिन्हें 'जीएसपीसी' में शामिल किया गया था उन्हें 2010 तक प्राप्त करना है। ये प्रावधान इस प्रकार हैं : -

- पादप विविधता को समझना तथा उसका प्रलेखन.
- पादप विविधता का संरक्षण।
- सम्पोषणीय उपायों से पादप विविधता का उपयोग.
- पादप विविधता के प्रति ज्ञान को बढ़ावा देना तथा जनसाधारण में जागरुकता बढ़ाना।
- पादप विविधता के संरक्षण की क्षमता को विकसित करना।

अनुमान है कि वनस्पति उद्यानों में मौजूद लगभग 90 फीसदी पौधे सीबीडी के पहले से ही संरक्षित हैं।

वनस्पति उद्यानों पर प्रभाव एवं व्यावहारिकता

6. जब से सीबीडी के प्रावधान अस्तित्व में आए हैं तब से दुनिया के वनस्पति उद्यान राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय नीतियों तथा दिशा-निर्देशों को व्यवहार में लाने का प्रयत्न कर रहे हैं. जिससे पीजीआरएस, जनन द्रव्य का आदान-प्रदान,

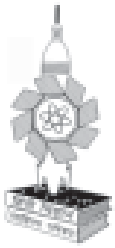

वनस्पति का संरक्षण तथा उनेक संपोषणीय उपयोगों का कार्य नए दिशा-निर्देशों के अनुसार किया जा सके।

नए दिशा-निर्देशों के अनुसार कोई भी वनस्पति उद्यान किसी दूसरे देश से पादप सामग्री उस देश के नियमों, दिशा-निर्देशों तथा नीतियों के अनुसार ही प्राप्त करेगा।

इस प्रकार किसी वनस्पति उद्यान के अधिकारियों को पादप सामग्री प्राप्त करने के लिए दूसरे देशों के नियम-कानूनों की जानकारी रखना आवश्यक हो गया है।

वनस्पति उद्यान पर प्रभाव एवं व्यावहारिकता -

7. हस्ताक्षर करने वाले प्रत्येक देश से यह आशा की जाती है कि वह पादप विविधता के संरक्षण के लिए एक राष्ट्रीय रणनीति तैयार करेगा और उसे व्यवहार में भी लाएगा।

वनस्पतियों का एक्स सीटू कंजरवेशन ही वनस्पति उद्यानों का मुख्य कार्य होगा। साथ ही अनुसंधान, इन सीटू कंजरवेशन, प्रशिक्षण, पौधों की सही पहचान करना, उनकी देखभाल, जनजागरण तथा लोगों को जागरूक, शिक्षित करना तथा उन्हें सहायता प्रदान करना, यह वनस्पति उद्यानों के मुख्य कार्य होंगे, जिनका सीबीडी में उल्लेख है।

वनस्पति उद्यानों पर प्रभाव तथा व्यावहारिकता -

8. सीबीडी ने इस बात को अधिक महत्व दिया है कि एक देश अपने आनुवंशिक स्रोतों (पौध सामग्री) को दूसरे देशों को भी उपलब्ध कराए। इससे दूसरे देशों में भी उस पौधे का विस्तार तथा संरक्षण हो सकेगा।

दो देशों के मध्य पादप आनुवंशिक पदार्थों का हस्तांतरण परस्पर स्वीकृत शर्तों पर होना चाहिए।

पादप सामग्री प्राप्त करने वाले वनस्पति उद्यान को उस पौध सामग्री पर किए गए शोध कार्य के परिणामों तथा उनके सभी उपयोगों की जानकारी पौध सामग्री प्रदाता वनस्पति उद्यान को देनी चाहिए।

वनस्पति उद्यान पर प्रभाव तथा व्यावहारिकता -

9. अनेक वनस्पति उद्यानों ने, जैसे रॉयल बॉटेनिक गार्डेन (कीव, यूके) तथा फेयर चाइल्ड ट्रापिकल गार्डेन (फ्लोरिडा, अमेरिका) ने पादप हस्तांतरण संधि (पीएमटीए) के लिए स्वयं ही अपने नियम बनाए हैं। 'द अमेरिकन एसोसिएशन ऑफ बॉटेनिक गार्डेन एंड आरबोरेटा' (ए ए बी जी ए) ने 1998 में एक प्रस्ताव पारित किया था कि सभी सदस्य वनस्पति उद्यान सी बी डी के सिद्धांतों तथा प्राविधानों को लागू करेंगे। रॉयल बाटेनिक गार्डेन (कीव, यू.के.) ने एक परियोजना स्वीकार की है कि यह संस्थान सी बी डी के प्रावधानों के अनुसार विश्व के वनस्पति उद्यानों के साथ लाभांश में भागीदारी करेगा। वनस्पति उद्यानों द्वारा बीजों के आदान-प्रदान की कार्य प्रणाली को मौलिक तथा व्यावहारिक ढंग से पुनर्गठित करना जिससे वे सी बी डी के प्रस्तावों के अनुसार कार्य कर सकें।

सी बी डी पादप आनुवंशिक स्रोतो के उचित मूल्यांकन के आधार पर जैव विविधता के विभिन्न भागों के संपोषणीय उपयोग को विशेष महत्व देता है। साथ ही विश्व के सभी वनस्पति उद्यानों को यह अवसर भी प्रदान करता है कि वे अपनी दी गई पौध सामग्री से दूसरे देशों से लाभांश प्राप्त कर सकें।

यद्यपि सी बी डी पौध सामग्री के निःशुल्क आदान-प्रदान पर रोक लगाता है लेकिन इससे आनुवंशिक संपदा के अति दोहन पर रोक लगी है। साथ ही सी बी डी विश्व के सभी वनस्पति उद्यानों को यह अवसर भी प्रदान करता है कि वे जैविक विविधता का संरक्षण तथा इसके लाभांश को प्राप्त कर सके। वनस्पति जगत से संबंधित कुछ परिभाषाएं।

जैव विविधता - जैव विविधता का अर्थ है भूमि की सतह, समुद्र, समस्त जलीय पारिस्थितिकी तंत्र व संयुक्त पारिस्थितिकीय में उपस्थित जीवित पादप प्रजातियों में विद्यमान विविधता आनुवंशिक तंत्र।

इसका अर्थ है आनुवंशिक पदार्थ जिनसे नए पौधे तैयार कर सकते हैं जैसे बीजाणु, बीज, कंद, प्रकंद, कलक

आनुवंशिक स्रोत का मूल स्थान - इसका अर्थ है ऐसा स्थान (देश) जहां आनुवंशिक स्रोत मूल रूप से पाया जाता है।

आनुवंशिक स्रोत का उत्पादक स्रोत - इसका अर्थ है एक ऐसा देश जो आनुवंशिक स्रोत को उपलब्ध करा सकता है अथवा उस देश से आनुवंशिक स्रोत प्राप्त किया जा सकता है.

संपोषणीय उपयोग - इसका अर्थ है जैव विविधता के विभिन्न घटकों, भागों को इस प्रकार से तथा इस गति से उपयोग किया जाए कि उसे किसी प्रकार की क्षति न पहुंचे। अर्थात जैव विविधता को उपयोग में लाने के साथ-साथ उसकी देखभाल इस प्रकार से की जाए कि वह वर्तमान के साथ-साथ भावी पीढ़ियों के लिए भी सुरक्षित रहे।

प्राकृतिक आवास - इसका (इन-सीटू कंडीशन) अर्थ वह स्थान जिसके पारिस्थितिक तंत्र और प्राकृतिक आवास में कोई आनुवंशिक स्रोत (पौधा) अपनी मूल अवस्था में अर्थात प्राकृतिक रूप में उगाया जा सकता है।

बाह्य संरक्षण - प्राकृतिक आवास से अलग हटकर जब किसी अन्य स्थान पर कोई पौधा सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है तो स्थान में उगाए गए पौधों को बाह्य देश में संरक्षण (एक्स-सीटू कंजरवेशन) कहते हैं।

डॉ होमी भाभा हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता- 2009 में प्रोत्साहन पुरस्कार प्राप्त

रक्त के एवज में रोग देते नन्हें कीट

- डॉ. शान्तिलाल चौबीसा -
प्राणीशास्त्र विभाग, राजकीय मीरा कन्या महाविद्यालय, उदयपुर- 313001, (राजस्थान)

प्राणी-जगत के ऐसे अनेक जीव-जन्तु जिनके काटने अथवा डंक मारने से इनका विष मनुष्य के शरीर में फैलन से शरीर के विभिन्न अंगों की जैविक कार्य प्रणालियां विकृत हो जाती हैं। जिसके कारण मनुष्य की मृत्यु भी हो सकती हैं। कुछ ऐसे भी नन्हें-नन्हें अकशेरूकी कीट हैं जिनके काटने के दौरान संक्रामक रोगों के कारक मानव शरीर में प्रवेश कर जाते हैं। जो कालान्तर में अनेक प्रकार के खतरनाक व घातक रोगो को जन्म दे देते हैं। विभिन्न प्रजाति के मच्छर व मक्खियां दिखने में भले ही नन्हें व तुच्छ लगते हों, पर इनके द्वारा मलेरिया, काला-अजार, डेंगू, चिकनगुनिया, हाथी-पांव जैसे गंभीर रोग मनुष्य में महामारी के रूप में फैल जाते हैं। वास्तव में ये कीट इन रोगों के वाहक है तथा कई रोगकारी परजीवियों का जीवन चक्र पूर्ण करते हैं. इस लेख में विभिन्न प्रजाति के नन्हें-नन्हें कीटों तथा इनसे होने वाले संक्रामक रोगों की नवीनतम जानकारी दी गई हैं।

दुनिया में जीवित विभिन्न प्रजाति के जीव-जन्तु अपने आहार में विभिन्न प्रकार के भोज्य पदार्थों का समावेश ठोस अथवा तरल रूप में करते हैं। भौतिक गुणों के आधार पर ये जीव इन्हें ग्रहण करने के कई तरह के तौर-तरीके अपनाते है साथ ही इनके मुंह की संरचनाएँ भी बदली हुई होती हैं। प्राणी जगत के कई जीव ऐसे भी हैं जो भोजन के रूप में तरल भोज्य पदार्थ खून का सेवन करते हैं। परन्तु ऐसे जीवों की संख्या भी कम नहीं हैं जो खून चूँसने के दौरान मनुष्यों को ऐसे खतरनाक व जान लेवा रोग दे देते हैं जिन्हें नियंत्रित करना वैज्ञानिकों के लिए आज भी एक चुनौती है। ऐसे जीव जो मनुष्य के रक्त को भोजन के रूप में अधिक पसंद करते हैं वे अधिकांश अकशेरूकी व प्राणी-जगत के सबसे बड़े संघ ऑर्थोपोडा से संबंधित नन्हें-नन्हें कीट हैं। ये इतने चालाक व चतुर होते हैं कि खून चूंसते वक्त मनुष्यों को इसका आभास भी नहीं होने देते हैं कि कोई नन्हा जीव इनके शरीर का खून चूस रहा हैं।

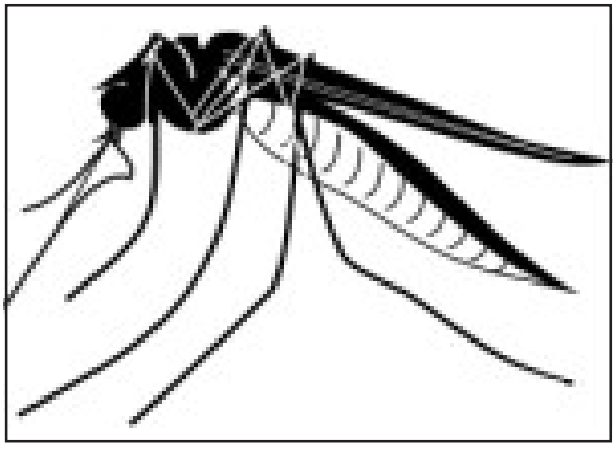

इसका पता अक्सर तब चलता है जब वे जीव खून पीकर जल्दी से लुप्त हो जाते हैं। एक बूंद खून पीने से मनुष्यों को कोई विशेष फर्क नहीं पड़ता परन्तु खून पीने के एवज में ये नन्हें कीट अपने मुंह की लार ग्रन्थियों में मौजूद हजारों-लाखों की संख्या में विभिन्न रोगाणुओं को मानव शरीर में प्रेषित कर देते हैं; जो कालान्तर में विभिन्न घातक रोगों को जन्म दे देतें है। चिकित्सा के अभाव में या फिर इलाज में लापरवाही बरतने पर इनमें से कई रोग मनुष्यों की मृत्यु का कारण बन जाते हैं। इसके साथ ही कई ऐसे रोग भी पनप जाते हैं जो अति कष्ट कारक तो होतें ही हैं और इनका कोई कारगर इलाज भी संभव नहीं है। वैज्ञानिक दृष्टिकोण में यह एक प्राकृतिक संतुलन है जो जैव-विकास में सहज ही 'प्राकृतिक वरणवाद' को प्रेषित करता है, वही 'डार्विन' के उस सिद्धान्त को और मजबूती प्रदान करता है जो जीवन संघर्ष को दर्शाता है। आइये आप भी जाने उन नन्हें-नन्हें कीटों को तथा उनसे होने वाले विभिन्न प्रकार के

खतरनाक व जानलेवा रोगों को जिसे ये कीट आसानी से मनुष्यों को दे देतें हैं।

1. **मलेरिया** - प्रतिवर्ष लाखों लोगों की जान लेने वाला यह खतरनाक रोग न केवल भारत में बल्कि दुनिया के कई देशों में व्याप्त हैं। लाख कोशिशों के बावजूद खून से संबंधित यह बीमारी वैज्ञानिकों, चिकित्सकों, व विश्व स्वास्थ्य संगठन के लिए आज भी चुनौती के रूप में विद्यमान है।

रक्त जनित यह रोग एक कोशिकीय सूक्ष्म परजीवी

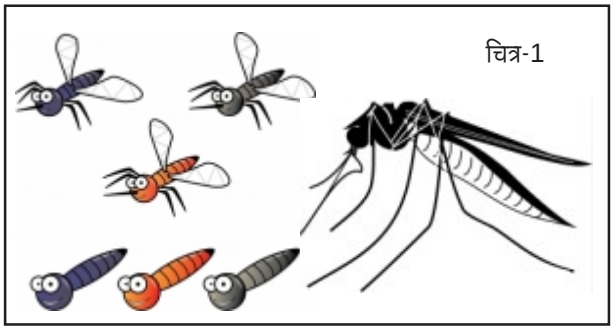

चित्र-1

'प्लाज्मोडियम' (चित्र सं. 1) जो प्राणी जगत के प्रोटोजोआ संघ के रिलोस्पोरिआ वर्ग से संबंधित अति सूक्ष्म जीव के संक्रमण के कारण पनपता है। इसकी खोज फ्रांसिसी चिकित्सक अल्फोंसे लावेरन ने 1980 में की। यह अन्तः कोशिकीय परजीवी मनुष्य के खून की लाल रक्त कोशिकाओं (R.B.Cs.) को संक्रमित कर इसमें मौजूद वर्णक (हीमोग्लोबिन) को भोजन के रूप में निरंतर भक्षण कर अपनी शारीरकि वृद्धि कर अनेक स्वरूपों में परिवर्धन करता रहता है। इससे उत्सर्जित विषैला पदार्थ 'हीमोजोइन' मनुष्यों के लिए अत्यंत विषैला होता है, जो मलेरिया के ज्वर की तीव्रता को कम ज्यादा करता है। प्लाज्मोडियम परजीवी न केवल रक्त कोशिकाओं को बल्कि शरीर के अति महत्वपूर्ण अंग जैसे-यकृत व प्लीहा को संक्रमित कर इनकी कोशिकाओं की संरचना व जैविक क्रियाओं को विकृत कर देते हैं। इससे मलेरिया बीमारी और गंभीर रूप में प्रकट होती हैं। मस्तिष्क को रक्त पहुंचाने वाली पतली-पतली खून वाहिनियों में जब ये परजीवी अवरोधक के रूप एकत्रित हो जाते हैं, तब मस्तिष्क की अति संवेदनशील तंत्रिका कोशिकाओं में ऑक्सीजन की आपूर्ति पर्याप्त मात्रा में नहीं होने की वजह से पीड़ित व्यक्ति की अक्सर मृत्यु हो जाती है। बच्चे इस 'मस्तिष्क-ज्वर-मलेरिया' के जल्दी से शिकार होते हैं तथा उपचार करने के बावजूद भी अक्सर संक्रमित बच्चे की मृत्यु हो जाती है

मलेरिया परजीवियों की प्रमुख रूप से चार प्रजातियां मौजूद हैं। पहली - प्लाज्मोडियम फैल्सिपेरम, दूसरी - प्ला वाईवेक्स, तिसरी - प्ला मलेरियाई व चौथी - प्ला ऑवेल. इनमें से पहली तीन प्रजातियां विश्वव्यापी हैं, वहीं चौथी प्रजाति पश्चिमी अफ्रीका तक ही सीमित हैं। इनमें से आमतौर पर पाये जाने वाला मलेरिया प्ला वाइवेक्स परजीवी द्वारा होता है। वहीं खतरनाक व जानलेवा मलेरिया फैल्सीपेरम परजीवी के संक्रमण द्वारा होता है।

मलेरिया रोग उन लोगों को अक्सर नहीं होता है जिनके खून की लाल रक्त कोशिकाओं में हीमोग्लोबिन-सी (Hb-C) एस (Hb-S) व एफ(Hb-F) नामक वर्णक पाया जाता है। यद्यपि हीमोग्लोबिन-सी व एस आनुवांशीकिय रूप से सामान्य हीमोग्लोबीन से भिन्न व विकृत होते हैं तथा विशेष परिस्थितियों में ये घातक भी होते हैं। जो लोग मलेरिया बाहुल्य क्षेत्रों में आदिकाल से रहते आए हैं उनमें से कई आदिम लोगों (Tribals) में हिमोग्लोबिन-सी व एस पाये गये हैं। जिन लोगों की लाल रक्त कोशिकाओं में इस प्रकार के विकृत हीमोग्लोबिन उपस्थित है उनमें मलेरिया रोग प्रायः इसलिए नहीं होता है, क्योंकि प्लाज्मोडियम परजीवी को जीवित रहने एवं शारीरिक वृद्धि के लिये पर्याप्त मात्रा में न तो भोजन (हीमोग्लोबिन) और न ही ऑक्सीजन की आपूर्ति होती है। ऐसी परिस्थिति में ये परजीवी जीवित नहीं रह पाते है।एक ऐसा तथ्यात्मक एवं महत्वपूर्ण आनुवांशिकीय उदाहरण है। जो डार्विन के प्राकृतिक वरणवाद को समझने व समझाने में अति उपयुक्त है। उन लोगों को भी मलेरिया नहीं होता जिनके रक्त की लाल कणिकाओं में जी-6-पी.डी. (ग्लूकोज-6-फॉस्फेट डिहाइड्रोजिनेज) नामक एंजाइम की कमी पायी जाती हैं। जिनका रक्त समूह 'बी' (Blood group "B") किस्म का हो उनमें भी मलेरिया का संक्रमण अन्य रक्त समूहों की तुलना में कम होता है।

संक्रमण - मलेरिया परजीवी का संक्रमण प्राणी जगत के सबसे बड़े संघ आर्थोपोडा के इन्सेक्टा वर्ग से संबंधित रात्रिचर मादा एनाफिलीज (चित्र सं.1) के काटने से होता है। यह तब भी संभव होता है जब यह मादा मच्छर मलेरिया परजीवी (स्पोरोजोइट) से संक्रमित हो। जब यह मादा मनुष्यों का रक्त चूंसती है उस दौरान इसकी लार में मौजूद सैंकड़ों की संख्या में ये मलेरिया परजीवी मनुष्यों के रक्त में प्रवेश (संक्रमण) कर जाते हैं।

मलेरिया का सर्वाधिक संक्रमण अथवा प्रकोप अगस्त से अक्टूबर माह में पाया जाता है। मलेरिया को केवल एनॉफिलीज मच्छर ही फैलाता है, इसकी खोज सर्वप्रथम चिकित्सक, मेजर रोनाल्ड रोज ने 1903 में भारत में ही की है।

मादा एनॉफिलीज मच्छर अधिक चालाक व चतुर होती

हैं। मनुष्यों को इसके काटने का अहसास तब होता है जब वे खून चूंसके उड़ चुकी होती है या थोड़ी सी हलचल होने पर यह तेजी से उड़ जाती है। यह लगातार दो-तीन घंटे उड़ सकती हैं एवं रात्रि में 20 से 30 किमी. की दूरी आसानी से तय कर सकती है। यह उन स्थानों में रहना ज्यादा पसन्द करती है जहां का वातावरण नमी व दलदल युक्त हों।

निदान एवं लक्षण - संभावित रोगी की रक्त पटिका का परीक्षण सूक्ष्मदर्शी यंत्र द्वारा करने पर लाल रक्त कणिकाओं में मलेरिया के प्लाज्मोडियम परजीव होने पर मलेरिया होने की पुष्टि हो जाती है। लेकिन किसी कारणवश जैसे की मलेरिया रोधी औषधियों के सेवन से ये प्लाज्मोडियम परजीवी सूक्ष्मदर्शीय यंत्र द्वारा अक्सर स्पष्ट दिखाई नहीं देते हैं। परंतु मलेरिया के लक्षण की स्थिति में क्यू.बी.सी. विधि द्वारा रोगी के रक्त का परीक्षण करने पर दस-पन्द्रह मिनट में ही इस परजीवी के होने की पुष्टि हो जाती है। निदान के लिए अन्य विधियां भी है लेकिन क्यू.बी.सी. विधि अधिक विश्वसनीय एवं उपयुक्त हैं। मलेरिया होने के नैदानिक लक्षणों में, नियमित आवृति में हल्का या तेज ज्वर आना, ज्वर के दौरान शरीर में कपकपी व पसीना आना, बदन व सिर में हल्का या तेज दर्द रहना, जी घबराना व उल्टी-दस्त होना, पेट में दर्द, भूख कम लगना, बार-बार चक्कर आना इत्यादि प्रमुख है। इनके अतिरिक्त संक्रमण तीव्र होने पर एनीमिया (रक्ताल्पता) से मुत्यु, बार-बार कन्वर्जन आना, सेरेब्रल-मलेरिया में प्रायः मृत्यु होना, गर्भपात व मृत बच्चों का जन्म होना इत्यादि लक्षण भी मलेरिया बीमारी में अक्सर पायें जाते हैं।

उपचार व बचाव - मलेरिया ऐलापैथिक औषधियों द्वारा बिल्कुल ठीक हो जाता है। परंतु यह तभी संभव है जब चिकित्सक के अनुसार औषधियों की पूरी मात्रा निर्धारित अवधि तक ली जाय अन्यथा मलेरिया पुनः हो सकता है, जो और अधिक खतरनाक साबित होता है। ताजा शोध एवं सर्वेक्षणों के अनुसार वर्तमान में मलेरिया परजीवी (प्लाज्मोडियम) अब इन मलेरिया रोधी औषधियों के प्रति शारीरिक एवं जैविक तौर पर प्रतिरोधक क्षमता विकसित कर ली है। इसलिये अब इन पारम्परिक औषधियों का असर इन पर कम हो गया है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार इन औषधियों की 'संयुक्त-थैरेपी' मलेरिया को समाप्त करने मे अधिक कारगर साबित हुई है। लेकिन इन औषधियों का प्रयोग जनजाति क्षेत्रों में बसे आदिवासियों में इनका रक्त परीक्षण करने के बाद चिकित्सक की देख-रेख में ही करना अधिक उपयुक्त होता है। मच्छरों के प्रजनन स्थानों व इनके आवासों को नष्ट करना, समय-समय पर नमीयुक्त व घनी आबादी वाले क्षेत्रों में डी.डी.टी. व बी.एच.सी. कीटनाशकों का छिड़काव करना तथा मच्छरों के काटने से बचने के लिए विभिन्न पारंपरिक व आधुनिक उपायों को अपनाने से न केवल मलेरिया रोग के होने से बचा जा सकता है बल्कि इसके फैलने को भी रोका जा सकता है।

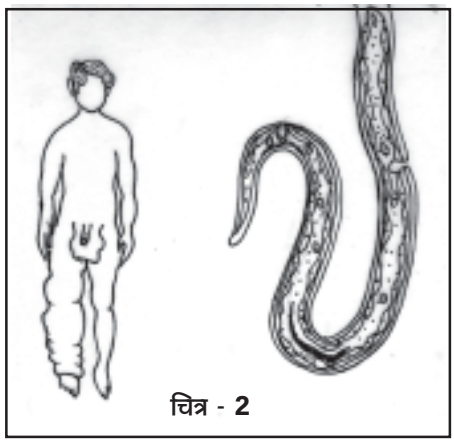
चित्र - 2

2 . फाइलेरिएसिस - दर्दनाक जिंदगी को जीने को मजबूर करने वाली यह बीमारी न केवल अभी तक अनियंत्रित है बल्कि इसकी कोई राम-बाण औषधि भी उपलब्ध नहीं हैं। निमटोडा संघ के फैसीडिया वर्ग से संबंधित द्विपोषी अन्त परजीवी फाइलेरिया-कृमि (चित्र सं.2) के संक्रमण से पनपने वाला यह रोग एक बार जिसे भी हो जाता है फिर उसके ठीक होने की संभावना कम ही रहती है। ये खतरनाक कृमि मनुष्य के रक्त व लसिका (लिम्फेटिक) तंत्र में रहते, पनपते व प्रजनन करते हैं। इनसे उत्पन्न सैकड़ों लार्वा (भ्रूण) रक्त परिसंचरण तंत्र में आ मिलते हैं। परंतु दिन में ये गहराई में स्थित रक्त वाहिनियों में छिप जाते हैं तथा रात्रि को ऊपरी सतह में स्थित इन वाहिनियों में पुनः आ जाते हैं। वयस्क कृमियों की संख्या अधिक बढ़ जाने से ये लिम्फ वाहिनियों में जगह-जगह अवरोधक के रूप में एकत्र हो जाते हैं। फलस्वरूप लिम्फ का परिसंचरण धीरे-धीरे अवरूद्ध होने लगता है। जिससे उस भाग का परिणाम बढ़ जाने से यह भाग हाथी के पांव (चित्र सं. 2) जैसा दिखाई पड़ता हैं. इस स्थिति को 'हाथी-पाँव' रोग (एलिफनटाइसिस) अथवा फाइलेरिएसिए रोग से जाना जाता हैं। चूंकि यह रोग लिम्फेटिक तंत्र से जुड़ा है, इसलिये इसे 'लिम्फेटिक- फाइलेरिएसिस' भी कहते हैं. यह रोग प्रमुख रूप से पाँवो, अण्डकोष (स्क्रोटम), स्तन व बाह्य मादा जननांगों में अधिक देखने को मिलता है। कभी-कभी इन अंगों में 'गेंगरीन' विकसित हो जाने पर इनमें द्वितीय संक्रमण होने से ये अंग सड़ने लगते हैं तथा इनमें श्वेत रंग के कीड़े (मेगेट्स) कुल बुलाने लगते हैं।

संक्रमण - फाइलेरिया कृमि के लार्वों (माइक्रोफाइलेरिया) से संक्रमित रात्रिचर क्यूलैक्स या एडिज प्रजाति के मच्छरों के काटने व खून चूंसने के दौरान इस रोग का संक्रमण हो जाता

है। ध्रुवीय प्रदेशों को छोड़कर भारत समेत कई देशों में इस बीमारी के संक्रमण का प्रभाव परिलक्षित होता है। भारत में यह रोग पश्चिम बंगाल, बिहार एवं तटीय राज्यों में सर्वाधिक देखने को मिलता है।

निदान एवं लक्षण - रात्रि के समय रोगी के लिए गये खून के नमूने की सूक्ष्मदर्शी यंत्र से जांच करने पर माइक्रोफाइलेरिया लार्वा उपस्थित होने पर इस रोग की पुष्टि हो जाती है। रोग की प्रारंभिक अवस्था में अर्थात कम संक्रमण से गंभीर लक्षण प्रकट नहीं होते हैं। फिर भी इस दौरान पीड़ित व्यक्ति बुखार, मानसिक मन्दता, सिर दर्द इत्यादि से प्रभावित होते है। परंतु रोग के संक्रमण की तीव्रता बढ़ने पर पैर, अण्डकोश, मादा जननांगों, स्तनों में दिनों-दिन सूजन बढ़ने लगती है। गंभीर अवस्था में प्रभावित अंगों में 'गेंगरीन' पनप जाता है।

चिकित्सा एवं रोकथाम - अभी तक इस बीमारी की कोई रामबाण औषधि विकसित नहीं हुई है और न ही उपलब्ध हैं। हेटेरैजन और एन्टिमनी तथा आर्सेनिक युक्त औषधियों द्वारा परिभ्रमण में उपस्थित सूक्ष्म फाइलेरियाई कृमियों को समाप्त किया जा सकता हैं। यह रोग न हो इसके लिये मच्छरो के काटने से बचने के उपाय भी करने चाहिए। रोग की पुष्टि होने पर भारतीय रोग संचारी संस्थान, दिल्ली से भी परामर्श व मार्गदर्शन लेने से इस गंभीर रोग को नियंत्रित करने में सफलता मिलती हैं।

3.डेंगू - विषाणु (वायरस) जनित डेंगू बुखार ऐसी खतरनाक बीमारी है जिसका उपचार समय पर नहीं करने पर पीड़ित व्यक्ति की मृत्यु भी हो सकती है। इस दौरान यदि शरीर पर उभरे चकत्तों से खून रिसने लगता है तब इस बीमारी को 'खूनी डेंगू बुखार' कहते हैं। गंदगी में अथवा बिना साफ-सफाई वाले ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले लोग डेंगू के शिकार अपेक्षाकृत जल्दी व अधिक होते हैं। इसका प्रभाव गर्म जलवायु वाले पिछड़े व गरीब देशों में ज्यादा देखा गया हैं. यह रोग महामारी के रूप में भी फैलता हैं। चूंकि यह रोग विषाणु जनित है इसलिए इनकी अवधि पूरी होने पर यह बीमारी स्वतः ही समाप्त हो जाती हैं। अधिकाधिक इसकी अविध सात दिनों तक रहती हैं। इस बीमारी से लगभग 10 प्रतिशत रोगियों की प्रायः मृत्यु हो जाती हैं।

संक्रमण - यह बीमारी फ्लेवीवायरस से संक्रमित मादा 'एडीज एजिप्टी' (चित्र सं. 3) नामक मच्छर के काटने से होती हैं. इसके शरीर पर सफेद और काली धारियां होने से इसे टाइगर (चीता मच्छर) भी कहते हैं। अधिकतर ये आस-पास एकत्रित खुले एवं साफ पानी में अंडें देते हैं। ये मच्छर बिना किसी भय के ज्यादातर दिन में ही काटते हैं। इसके अतिरिक्त

चित्र-3

'क्यूलेक्स' नामक मच्छर भी इस रोग के वाहक (वेक्टर) हैं।

लक्षण एवं निदान - रोगी के रक्त की सीरोलोजिकल एवं वायरोलोजिकल परीक्षण रोग को सुनिश्चित करता है। यद्यपि इसके होना या ना होने से रोगी के उपचार में कोई अंतर नहीं पड़ता. पेशाब की जांच से इसका सही निदान हो जाता हैं।

डेंगू बुखार विषाणु जनित अन्य बुखारों से काफी मिलता जुलता हैं। परंत इसके निश्चित व विशिष्ट लक्षणों के आधार पर इसकी पहचान आसानी से हो जाती हैं। यह बीमारी तीन अवस्थाओं में अक्सर देखने को मिलती हैं। वहीं इसके लक्षण भी अलग-अलग होतें हैं।

(अ) साधारण डेंगू -दो से सात दिनों तक तेज बुखार आना, अचानक तेज बुखार, प्रकाश से भय लगना, सिर के आगे व आंखों के पीछे तथा मांसपेशिओं व जोड़ो में तेज दर्द व सूजन, चक्कर आने के साथ जी मिचलाना व उल्टी आना, शरीर पर खून के चकते इत्यादि लक्षण पायें जाते हैं, बच्चों में ये लक्षण तुलनात्मक हल्के होते हैं।

(ब) रक्त स्राव युक्त डेंगू (डेंगू हेमेरोजिक बुखार) - उक्त लक्षणों के अतिरिक्त रक्त स्राव वाले डेंगू बुखार में, शरीर की त्वचा का पीली व ठंडी होना, नाक, मूंह और मसूडों से खून बहना, प्लेटेलेट कोशिकाओं की संख्या एक लाख या इससे कम हो जाना, फेफड़ों एवं पेट में पानी एकत्रित हो जाना, त्वचा पर घाव पड़ना, नींद न आना व बेचैनी के साथ कहरना, अधिक प्यास लगना, खून युक्त या खून रहित उल्टी आना, सांस लेने में अधिक कठिनाई इत्यादि लक्षण पायें जाते हैं।

(स) डेंगू शॉक सिन्ड्रोम -उक्त लक्षणों के अतिरिक्त रोगी के रक्त परिसंचरण में खराबी अथवा बदलाव जैसे नब्ज का कमजोर होना व तेजी से चलना, रक्त चाप का कम होना व त्वचा में

शीतलता तथा पेट में दर्द के साथ अत्याधिक बेचैनी आदि लक्षण भी पाये जाते हैं।

उपचार एवं रोकथाम -इस बीमारी की कोई औषधि नहीं बनी है और न ही इसका कोई टीका है। पीड़ित व्यक्ति में उक्त नैदानिक लक्षण पाये जाने पर इसे पूर्ण आराम देना चाहिये व आवश्यकता अनुसार भोजन। बुखार तेज होने पर चिकित्सक के अनुसार पैरासिटामोल की गोली दी जा सकती हैं। परंतु रोगी को एस्प्रीन, आइब्रप्रोफेन व प्रतिजैविक (एंटीबायटिक्स) जैसी औषधियां देना निषेध है। मरीज के

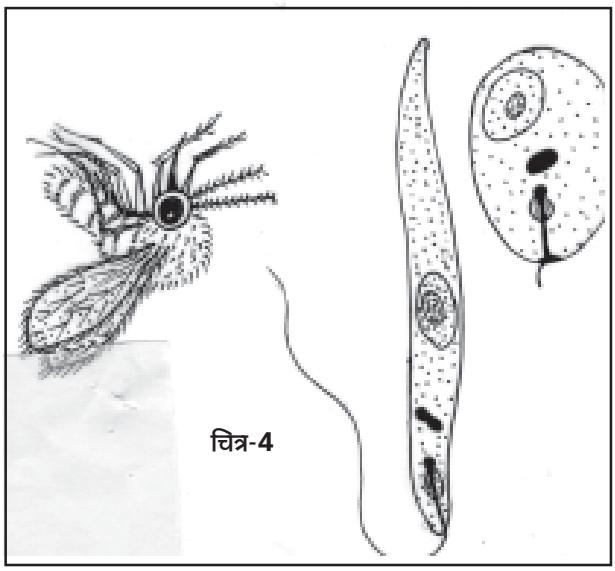

चित्र-4

पेट में तेज दर्द, काले रंग का मल आना, मसूड़ों, त्वचा व नाक से खून रिसना, अधिक पसीना आना तथा त्वचा का ठंडा पड़ जाना जैसे लक्षण प्रकट होने की स्थिति में रोगी को तुरंत अस्पताल में भर्ती करा कर उपचार प्रारम्भ करवाने से रोगी की जान बचाई जा सकती हैं। कीट नाशकों का समय-समय पर छिड़काव, मच्छरदानी का प्रयोग व रोग की पुष्टि होने पर क्षेत्रीय चिकित्सा अधिकारी को सूचित करने से इस रोग के नियंत्रण में अपेक्षित सफलता मिलती हैं।

4. चिकनगुनिया - यह भी विषाणु (वायरस) जनित बीमारी है. डेंगू की तरह ही अन्य वायरस जनित बीमारियों से यह बीमारी भी प्रारम्भिक अवस्था में मिलती जुलती हैं। इसका संक्रमण भी 'एडिस एजिप्टी' नामक मादा मच्छर के काटने से होता व फैलता हैं। परंतु यह बीमारी अर्बोवायरस से संबंधित एल्फावायरस वंश के सिंदबीज नामक विषाणुओं के संक्रमण के कारण पनपता हैं। इस बीमारी के प्रारंभिक लक्षण, उपचार एवं बचाव भी डेंगू की तरह ही होतें हैं। परंतु यह बीमारी डेंगू की तरह घातक नहीं होती हैं। इसमें प्लेटलेट्स की संख्या भी नहीं घटती है और न ही आंतरिक व बाह्य रक्त स्राव होता है। यह इस बीमारी की प्रमुख पहचान है। इसका भी कोई विशेष इलाज उपलब्ध नहीं हैं। परंतु यह स्वतः ही समाप्त हो जाती हैं।

5.निद्रा-रोग (गौम्बिय ट्रिपैनोसोमिएसिस) - मध्य व पश्चिम अफ्रीका में व्यापक रूप से फैला यह रोग प्रायः घातक होता हैं। उपचार तुरंत नहीं मिलने की स्थिति में रोगी व्यक्ति नियमित अंतरालों में सोना आरम्भ करता है और बाद में गहरी नींद में सो जाता हैं। जिसका अंत सदैव मृत्यु ही होती हैं। यह बीमारी प्राणी जगत के आंख से नहीं दिखाई देने वाले एक कोशिकीय सूक्ष्म जूफ्लैजिलेट परजीवी 'ट्रिपैनोसोमा गैम्बिएन्स' (चित्र सं. 4) के संक्रमण के कारण पनपती हैं. ट्रिपैनासोमा परजीवी की और भी प्रजातियां होती है लेकिन ये सभी क्षेत्र आधारित होती हैं. ये परजीवी मनुष्यों के रक्त एवं लसीका ग्रन्थियों में वास एवं अलैंगिक जनन कर अपनी आबादी में निरंतर वृद्धि करते रहते हैं। जब ये परजीवी रक्त परिसंचरण द्वारा केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र के मस्तिष्क मेरूद्रव में प्रवेश कर जाते हैं, तब निद्रा-रोग विकसित होने लगता हैं। यह बीमारी अन्य कशेरूकी प्राणियों को भी होती हैं। परंतु ऊंटों में यह बीमारी तुलनात्मक रूप से तेजी से फैलती है जिसके कारण ये पालतू पशु देखते ही देखते एक के बाद एक मर जाते हैं। ऊंटों की यह बीमारी 'सर्रा' नाम से भी जानी जाती है।

संक्रमण -यह बीमारी खून चूंसने वाली 'सेट्सी' (चित्र सं. 4) नामक वाहक मक्खी (ग्लोसाइना पाल्पैलिस) के कारण एक से दूसरे मनुष्य में फैलती हैं। इस बीमारी के कारक ट्रिपेनोसोमा परजीवियों से संक्रमित यह मक्खी मनुष्यों को काटने के दौरान अपनी लार ग्रंथियों में मौजूद इन परजीवियों को लार के साथ मनुष्य के रूधिर में प्रेषित कर देती हैं। ये मक्खी उन घनी वनस्पतियों में ही रहना पंसद करती हैं जो नदियों, बड़े सरोवरों, नदियों और झीलों के आस-पास फलती-फूलती हो। इसीलिए इन क्षेत्रों में बसे लोगों व पशुओं में इस बीमारी का प्रकोप (संक्रमण) तुलनात्मक रूप से अधिक पाया जाता हैं। सेट्सी (ग्लोसाइना) मक्खी (बग) द्वारा निद्रा-रोग फैलता हैं, इसकी खोज सर्वप्रथम 'सर डेविस ब्रूस' द्वारा 1895 में की गई थी।

निदान एवं नैदानिक लक्षण - रोगी व्यक्ति की रूधिर की अभिरंजित पटिकाओं अथवा लसीका ग्रंथियों से निकाले गए द्रव में 'ट्रिपैनोसोमा' परजीवियों को माइक्रोस्कोप में आसानी से देखा जा सकता हैं। निद्रा-रोग की अवस्था में कटि अथवा सिस्टर्न छेदन द्वारा प्राप्त किये गये मस्तिष्क मेरू द्रव का परीक्षण करने पर भी इस रोग की पुष्टि हो जाती हैं।

इसके प्रमुख लक्षणों में रोगी की लसीका ग्रन्थियों में सूजन, अनियमित पुनरावृत्ति ज्वर का होना, शारीरिक

कमजोरी एवं वजन घटना, खून की कमी (रक्तहीनता), नब्ज की दर अधिक होने के साथ-साथ सिर में तीव्र दर्द इत्यादि होतें हैं। मृत्यु पूर्व रोगी नियमित अंतरालों में सोना आरंभ करता है व बाद में गहरी नींद में सो जाता है।

उपचार एवं नियंत्रण -इस बीमारी की प्रारंभिक अवस्था में ही इलाज संभव है तथा कई असरदार ऐलौपेथक औषधियों भी उपलब्ध हैं। परंतु परजीवियों का एक बार मस्तिष्क मेरूद्रव में प्रवेश हो जाने पर इस बीमारी का नियंत्रण करना बहुत ही मुश्किल हैं। इसके निवारण एवं नियंत्रण हेतु इसके वाहक सेट्सी मक्खियों के उन्मूलन करना जरूरी होता हैं। इसके आवासों को खत्म करके व कीट नाशकों (डी.डी.टी.) के प्रयोग द्वारा इनका नाश किया जा सकता हैं।

6. **लीशमैनिएसिस** - भारत समेत अन्य एशिआई देशों में फैला यह पीड़ा दायक घातक रोग भी एक कोशिकीय सूक्ष्म परजीवी 'लीशमैनिआ' (चित्र सं.5) द्वारा जनित होता हैं। इस रक्त परजीवी की और भी प्रजातियां हैं जो क्षेत्रीय विशेष होती है तथा इनकी रोग जनकता भी भिन्न-भिन्न होती हैं। चिकित्सकीय भाषा में यह बीमारी मनुष्यों में प्रमुख रूप से दो स्वरूपों में पायी जाती हैं. पहली जिसे 'अन्तरंग-लीशमैनिएसिस' अथव काला-अजार कहते हैं जो अत्यंत घातक होती हैं तथा 'लीशमैनिआ डोनोवली' प्रजाति के परजीवी के संक्रमण से पनपती हैं। इस परजीवी का सर विलियम लीशमन ने सन् 1900 में भारत में ही खोजा था। अंतरंग-लीशमैनिएसिस में शरीर के आंतरिक अंगो जैसे यकृत, प्लीहा, अस्थि मज्जा, रूधिर, लसीका ग्रन्थियां इत्यादि की भक्षाणु कोशिकाओं को ये परजीवी संक्रमित करते हैं। दूसरी, जिसे त्वचीय-लीशमैनिएसिस अथवा प्राच्य-दाह जो 'ली. ट्रांपिका' परजीवी के संक्रमण से उत्पन्न होती हैं. इसमें ये परजीवी सिर्फ त्वचा की अन्तः स्तरी कोशिकाओं को ही संक्रमित करते है। जिससे शरीर पर अंगूरों के समान अनेक पिंडक बन जाते हैं जो बाद में फोड़ों में रूपान्तरित हो जाते हैं। इसी तरह एक और लीशमैनिएसिस जिसे 'एस्पन्डिआ' कहते हैं। जो 'ली ब्रसिलिएंसिस' नामक परजीवी के संक्रमण से पनपती हैं। इसमें सामान्यतः नासा-गुहिकाओं, मुंह व ग्रसनी में फफोले बन जाते हैं।जो अति पीड़ादायी होता हैं।

संक्रमण

एक से दूसरे मनुष्य में इस बीमारी का संक्रमण प्राणी-जगत के आर्थोपोडा, संघ के इन्सेक्टा वर्ग से संबंधित 'फ्लेबोटोमस' (चित्र सं. 5) वंश की संक्रमित मादा मक्खियों (फ्ले, आर्जेनिटपेस) के काटने से होता है। रक्त चढ़ाने व यौन संबंध के दौरान भी इसका संक्रमण हो सकता हैं, परंतु

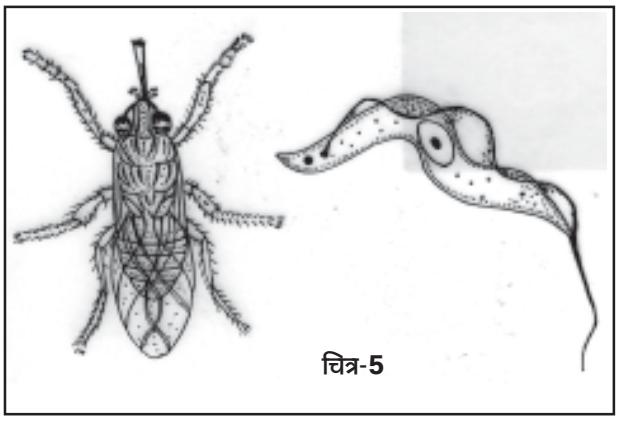

चित्र-5

इसका संभावना प्रायः कम होती है। काला-अजार अथवा अन्तरंग-लीशमैनिएसिस का संक्रमण बिहार, बंगाल, उड़ीसा, आंध्रप्रदेश, तमिलनाडु जैसे राज्यों में अधिक पाया जाता है। राजस्थान सहित पश्चिमी राज्यों में प्राच्य-दाह का संक्रमण देखा गया है।

निदान एवं नैदानिक लक्षण - रोगी के रक्त, अस्थि मज्जा व प्लीहा के उत्तकों की अभिरंजित पट्टिकाओं (स्लाइड्स) का सूक्ष्मदर्शी यंत्र से जांच करने पर लीशमैनिआ पाये जाने पर इस रोग की पुष्टि हो जाती हैं।

चूंकि लीशमैनिआ परजीवी प्रमुख रूप से भक्षण कोशिकाओं को ही संक्रमित व दूषित करता हैं, इसलिए शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता कमजोर पड़ने से अनेक शारीरिक विकृतियाँ एक के बाद एक प्रकट होने लगती हैं. इसमें रोगी को नियमित अथवा अनियमित बुखार रहता हैं। इसकी प्लीहा में दिनों दिन अभिवृद्धि होती रहती है। त्वचा का सूखापन व खुदरापन होने के साथ-साथ इसका कालापन होना (काला-अजार), बार-बार पेशाब आना, रक्ताल्पता, बालो का पतला होना व इनका झड़ना, टी.बी. रोग का विकसित होना या पेचिश इत्यादि लक्षण अंतरंग-लिशमैनिएसिस बीमारी में देखें जा सकते हैं। वही त्वचा-लिशमैनिएसिस में गलें, मुंह व शरीर के अन्य भागों में कई छोटी-बड़ी गांठे विकसित हो जाती हैं। जो एक समूह के रूप में त्वचा से लटकी हुई दिखाई दे पड़ती है।

7. उपचार एवं नियंत्रण -आयुर्विज्ञान में इसकी चिकित्सा उपलब्ध हैं। ऐन्टीमनी यौगिकों से बनी औषधियाँ इस बीमारी में काफी, कारगर साबित हुई हैं। सोडियम ऐन्टिमोनिक ग्लूकोनेट, निऑस्टिबोसन और यूरिया स्टिबैमोइन दवाइयां इस रोग में अधिक प्रभावशाली हैं। परंतु इन औषधिओं का प्रयोग चिकित्सक के सलाह के बिना नहीं लेना चाहिए।

इस बीमारी की वाहक सेण्ड मक्खियों को समाप्त करना तथा रोग की पुष्टि होने पर तुरंत उपचार प्रारम्भ करने से इस रोग को नियंत्रित करने में अधिक सफलता मिलती है।

डॉ होमी भाभा हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता- 2009 में प्रोत्साहन पुरस्कार प्राप्त

कार्ल्सवर्ग पर्वतश्रेणी के तलछट की विशेषता

- डॉ.अनिल भि.वलसंगकर -
राष्ट्रीय समुद्र विज्ञान संस्थान, गोवा - 403004

हिंद महासागर के कार्ल्सवर्ग पर्वतश्रेणी में तलछट (sediments) होना मध्य एटलांटिक महासागर पर्वतश्रेणी के समान माना जाता है। कार्ल्सवर्ग पर्वतश्रेणी की सतह के 100 सें.मी. नीचे तक के तलछट का अध्ययन करने से प्रतीत होता है कि तलछट की उत्पत्ति का कारण जमीन से (continental) आनेवाले कण, जैविक (biogenic) कण तथा डायजेनिसिस (diagenesis) की प्रक्रिया है। कार्ल्सवर्ग पर्वतश्रेणी में यह तलछट 3 सें.मी. प्रति 10000 साल की दर से जमा हो रहे हैं। तलछट में तांबा, गिलट (nickel), लोहा, और मैंगनीज जैसी धातुओं की प्रतिशतता अत्यल्प पाई गई। कैल्सियम कार्बोनेट ($CaCO_3$) और इलाइट (illite) खनिज से समृद्ध इन तलछटों में लोहा और मैंगनीज प्रचुर मात्रा में (enrichment) नहीं मिला तथा विशिष्ट धातु के चिन्हक (signature) का और चुंबकीय अतिसंवेदनशीलता (magnetic susceptibility) का भी अभाव रहा।

कार्ल्सवर्ग पर्वतश्रेणी हिन्द महासागर में, विषुवत रेखा के उत्तरीय भाग में अरब सागर और सोमाुलिया जलाशय (basin) को अलग करती है जहां, पानी की औसत गहराई 2500 से 3500 मी. है. (चित्र-1). आकृति विज्ञान के अनुसार यह पर्वतश्रेणी मध्य एटलांटिक महासागर की पर्वतश्रेणी के समान पथरीला और विषम (rough) है। कार्ल्सवर्ग पर्वतश्रेणी का आधा विस्तार दर (half spreading rate) 1.2 से 1.5 सें.मी.प्रति वर्ष बताया गया है। कार्ल्सवर्ग पर्वतश्रेणी के 600 कि.मी. लंबे खंड में, राष्ट्रीय समुद्र विज्ञान संस्थान द्वारा किए गए सर्वेक्षण और अन्वेषण (exploratio) के दौरान पानी, पत्थर और तलछट के अनेक नमूने प्राप्त किये गये।

कार्ल्सवर्ग पर्वतश्रेणी के इलाके में राष्ट्रीय समुद्र विज्ञान संस्थान, गोवा द्वारा भूविज्ञान मंत्रालय, नई दिल्ली की तरफ से ओ.आर.वी. सागर कन्या और जर्मन की आर.वी.सोने अनुसंधान पोत (research veaael) (चित्र-2) के साथ 1996 से अनेक पोतविहार (cruise) का आयोजन किया गया। (sk-114,SK-154 SK-207) और (NIO-RVS-II) इन पोतविहारों के दौरान कार्ल्सवर्ग पर्वतश्रेणी का प्रतिचित्रण (mapping) किया गया और पानी, पत्थर और तलछट के नमूने इकट्ठे किए गए।

कार्य पद्धति - समुद्र के नीचे 3700 से 4600 मी. की गहराई में कार्ल्सवर्ग पर्वतश्रेणी क्षेत्र क़े 600 कि.मी. लंबे खंड का प्रतिचित्रण ओ.आर.व्ही., सागर कन्या जलपोत के बहु किरण पुंज (multibeam) हायड्रोस्विप यंत्र द्वारा किया गया। (चित्र-3) अक्षीय घाटी (axial valley) और पार्श्वभाग (flank) में से तलछट के नमूने SK-114 और SK-154 पोतविहार में गुरुत्वाकर्षी क्रोड (gravity core 6मी.) और कुदाली क्रोड (spade core 35से.मी.) से लिए गए। बाद में सभी तलछटों को अलग-अलग प्रकार के अध्ययन के लिए 2,5 और 10 सें.मी. के नमूनों में बांटा गया। तलछटों की विशेषता जानने के लिए तलछट के कणों का अध्ययन, रासायनिक विश्लेषण, तथा रेडियोसक्रियता (radioactive) और चुंबकीय अतिसंवेदनशीलता (magnetic susceptibility,X_n) का मापन (measurements) किया गया।

तलछट में बालू (silt) और चिकनी मिट्टी का प्रतिशत तथा बनावट (texture) की पहचान पिपेट विश्लेषण विधि से किया गया। तलछट के दो माइक्रोन आकार वाले कणों को कांच (slide)पर फैलाकर उनके अभिविन्यस्त (oriented) प्लेट बनवाए जिन्हें फिलिप्स के एक्स-रे डिफ्रेक्टोमीटर (XRD,PW 1840)

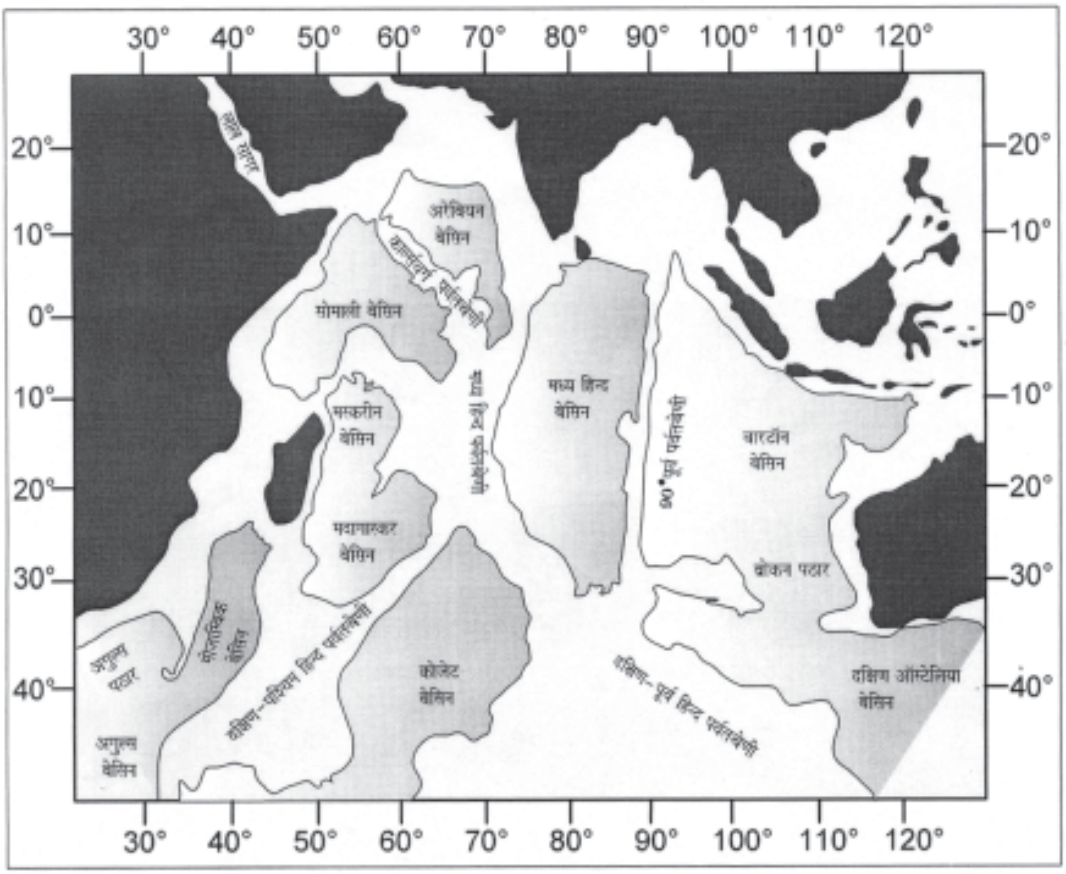

(चित्र-1)

यंत्र पर गिलट निस्यंदक (filter) और तांबा धातु के अल्फा (Cu K a) विकिरण (radiation) के साथ 20mA और 40 kV शक्ति में 3^0से 22^0 तक 20 प्रति मिनट की रफ्तार से घुमाया गया। चिकनी मिट्टी (clay) में खनिज (minerals) की प्रतिशतता (%) अधिकतम वजन क्षेत्रफल^2 (weighted peak area) नाप कर ज्ञात किया गया। वेट ऑक्सिडेशन पद्धति से टोटल ऑरगॅनिक (कार्बन) अनुमानित किया गया। तलछट में कैल्सियम कार्बोनेट ($CaCO_3$) की प्रतिशतता कूलोमीटर (Coulometer,UIC Inc मॉडल5014) द्वारा प्राप्त (determined) की गई।

तलछट में लोह, मैगनीज, सिलिका तथा एल्यूमिनियम धातु के विश्लेषण (analysis) के लिए हैदराबाद के एन.जी.आर.आय. के एक्स.आर.एफ. (XRF) और आय.सी.पी.एम.एस. (ICP-MS) उपकरणों का उपयोग किया

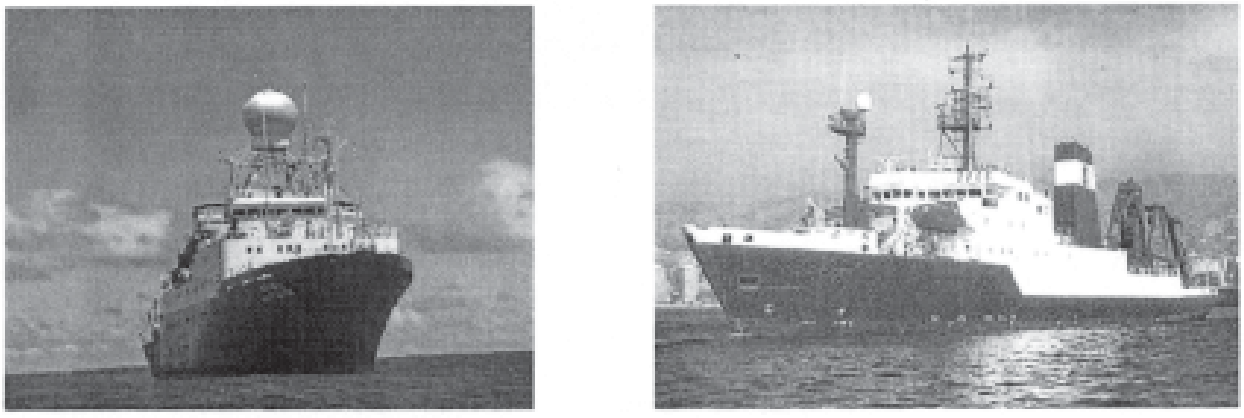

(अ) (ब)

(चित्र-2)

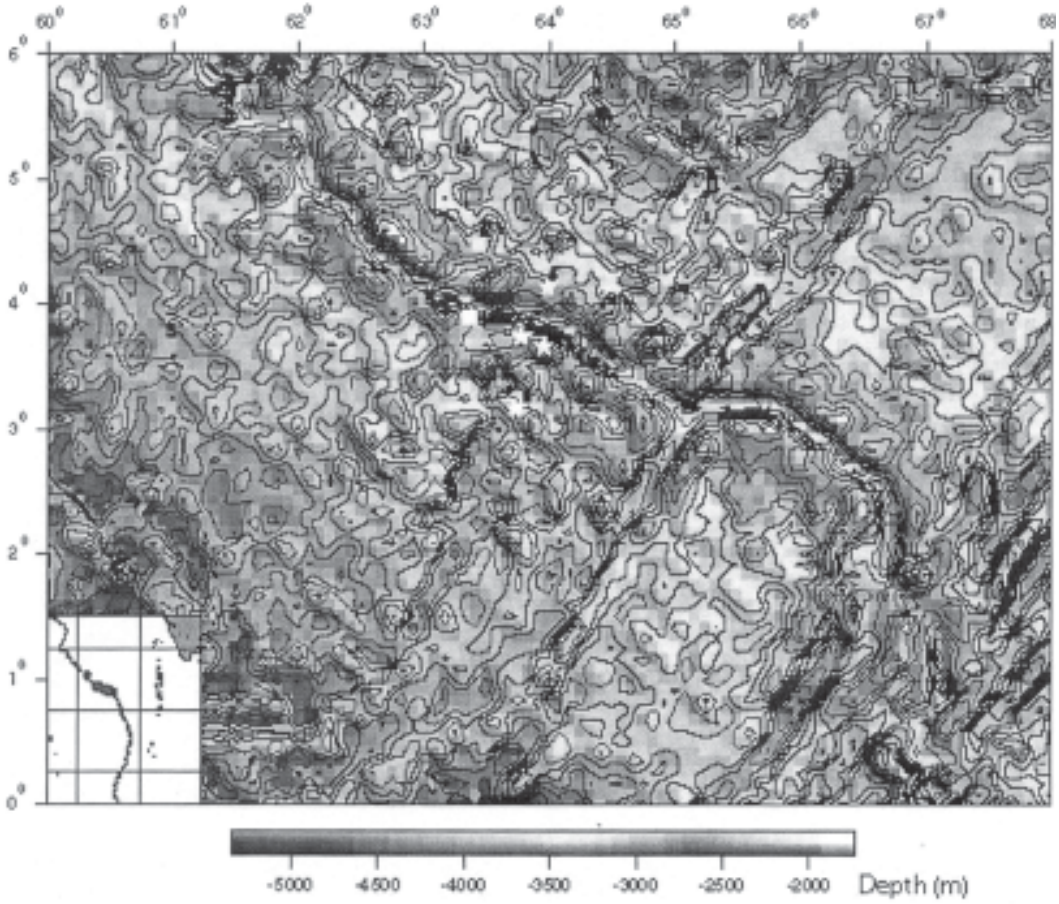

(चित्र-3)

गया। चुंबकीय अतिसंवेदनशीलता (x2f) का मापन मंगलोर विश्वविद्यालय के वार्टिंग्टन मैगनेटिक ससेप्टिविलिटी मीटर (मॉडल MS2) पर किया गया।

अक्षीय घाटी के तलछट

अक्षीय घाटी (axial valley) के मृत्तिकामय रेत (clayey silt) जैसी बनावट की तलछट में इलाइट (23-40%) और क्लोराइट (22-45%) की सीमा स्मेक्टाइट (6-38%) और केओलिनाइट (13-20%) खनिज से ज्यादा रही। (चित्र-4) कैल्सियम कार्बोनेट (20-50%), टीओसी (0.25-0.35%) और इलाइट (26-41%) की मात्रा तलछट की गहराई के साथ बढ़ती गई और 8-10सें.मी. पर सबसे ज्यादा रही। मगर, बालू (8-12%) और चिकनी मिट्टी (31-46%) की मात्रा गहराई के साथ घटती गई (चित्र-4)। अक्षीय घाटी के दूसरे क्रोड (core) में 50-54 सें.मी. पर ध्यान देने योग्य बदलाव (noticeable changes) दिखाई दिए जहां स्मेक्टाइट, केओलिनाइट, क्लोराइट, बालू, चिकनी मिट्टी और मैंगनीज की मात्रा उच्च रही तथा कैल्सियम कार्बोनेट, टीओसी, लोहा और चुंबकीय अतिसंवेदनशीलता (X) के आंकड़े कम रहे। अक्षीय घाटी के ही तीसरे क्रोड में जलपाई (olive) रंग के तलछट में भी 50-60 सें.मी. पर यहीं बदलाव और एक बार देखे गए जहां बालू, इलाइट, केओलिनाइट, क्लोराइट में गिरावट, और चिकनी मिट्टी, लौह, टीओसी, मैंगनीज और स्मेक्टाइट की मात्रा उच्च रही।

पर्वतीय पार्श्वभाग के तलछट

कार्ल्सवर्ग पर्वतश्रेणी के पार्श्वभाग से लिए गये तलछट के तीन नमूनों में से दो उत्तर और एक दक्षिण भाग से एकत्र किया गया। उत्तर के पहले क्रोड में इलाइट और क्लोराइट का वर्चस्व रहा और गूंदे के नीचे के हिस्सों में स्मेक्टाइट, केओलिनाइट में गिरावट, और इलाइट, क्लोराइट और चिकनी मिट्टी की मात्रा अधिक पायी गयी। वैसे ही कैल्सियम कार्बोनेट (58-68%) और लोह (6-18%) की मात्रा बढ़ती गई मगर मैंगनीज (0.6-0.1%) और टीओसी (0.3-0.1%) की मात्रा घटी (चित्र-5)। पार्श्वभाग के उत्तरी दिशा के दूसरे क्रोड में नीचे की तरफ वैसी ही प्रवृत्ति देखी गई जहां इलाइट, क्लोराइट और चिकनी मिट्टी की मात्रा बढ़ती गई, और स्मेक्टाइट, केओलिनाइट और बालू की मात्रा कम हुई, तथा लोहे की मात्रा 10 से 2%

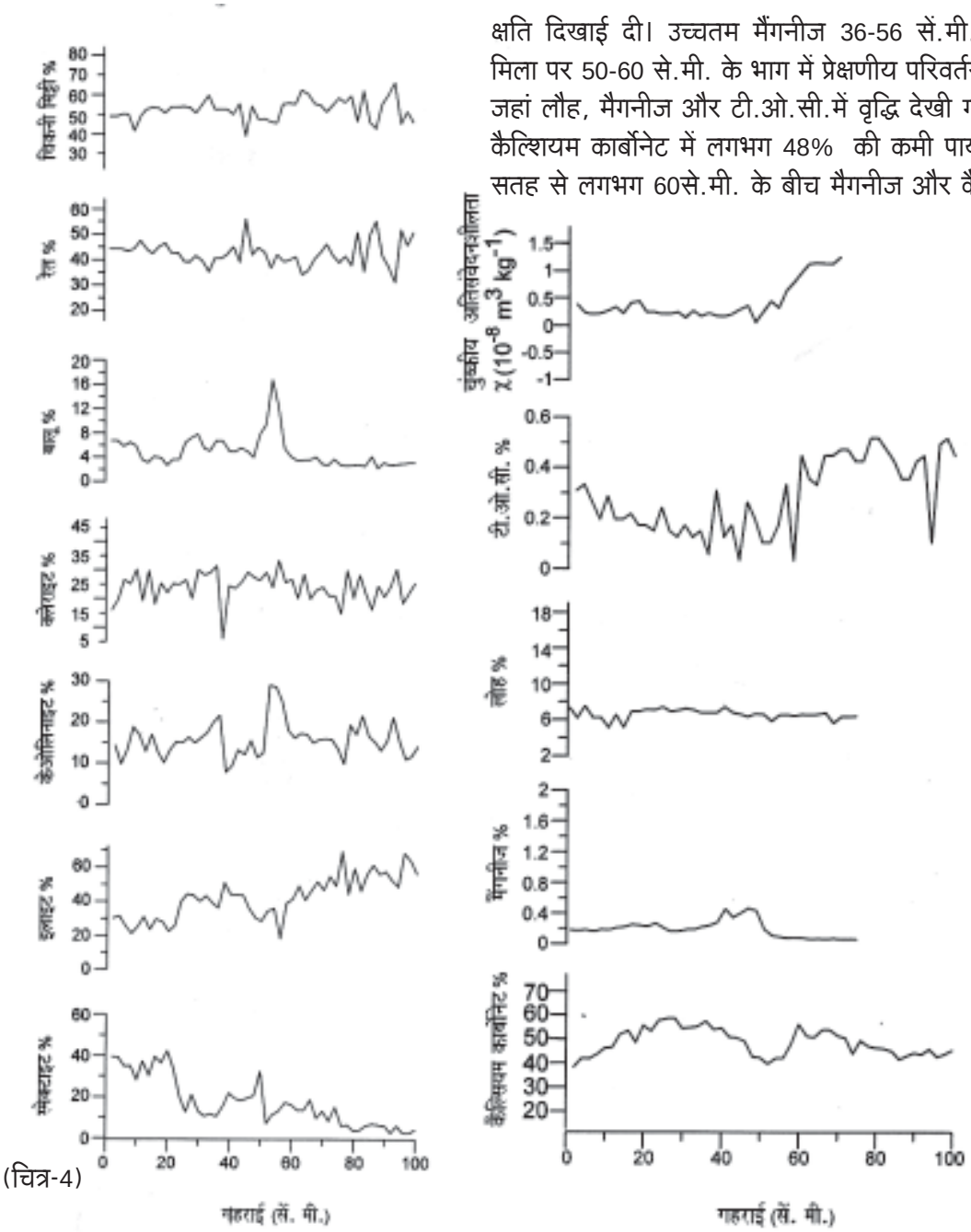

(चित्र-4)

तक नीचे आ गई। मैंगनीज का छोटा पीक (peak) 22-40 सें.मी. पर रहा परंतु ध्यान देने योग्य बदलाव 50 से 60 सें.मी. भाग में मिले जहां कार्बोनेट, लोहा, मैंगनीज और टीओसी (4%) में विशिष्ट परिवर्तन नजर आए। थोड़ी सी ज्यादा चुंबकीय अतिसंवेदनशीलता (0.37) 48 सें. मी. पर मिली। दक्षिण दिशा के क्रोड में रेत का प्रमाण ज्यादा रहने से तलछट की बनावट 'रेतवाली चिकनी मिट्टी' (silty clay) रही। क्रोड में नीचे की ओर इलाइट, चिकनी मिट्टी और लौह की मात्रा में बढ़त तथा चुंबकीय अतिसंवेदनशीलता (X_{lf}) में क्षति दिखाई दी। उच्चतम मैंगनीज 36-56 सें.मी.के भाग मिला पर 50-60 से.मी. के भाग में प्रेक्षणीय परिवर्तन दिखा, जहां लौह, मैंगनीज और टी.ओ.सी.में वृद्धि देखी गयी और कैल्शियम कार्बोनेट में लगभग 48% की कमी पायी गयी। सतह से लगभग 60से.मी. के बीच मैंगनीज और कैल्सियम कार्बोनेट के पीक नजर आये।

कार्ल्सवर्ग पर्वतश्रेणी के सभी क्रोड में सिलिका और एल्यूमिनियम धातु की प्रवृत्ति एक जैसी रही और उनके पीक 6,10,14,26,33,52 और 80 सें.मी. भाग में रहे मैंगनीज एवं एल्यूमिनियम के परिमाण सबसे ज्यादा 40 से.मी. के भाग में मिले। इसकी तुलना में पोटैसियम (K) धातु की सीमा, अक्षीय घाटी के तलछट में 1.3-3.9% तथा पार्श्व के तलछट में 0.8-8.0% रही और दक्षिणी तट के एक क्रोड को

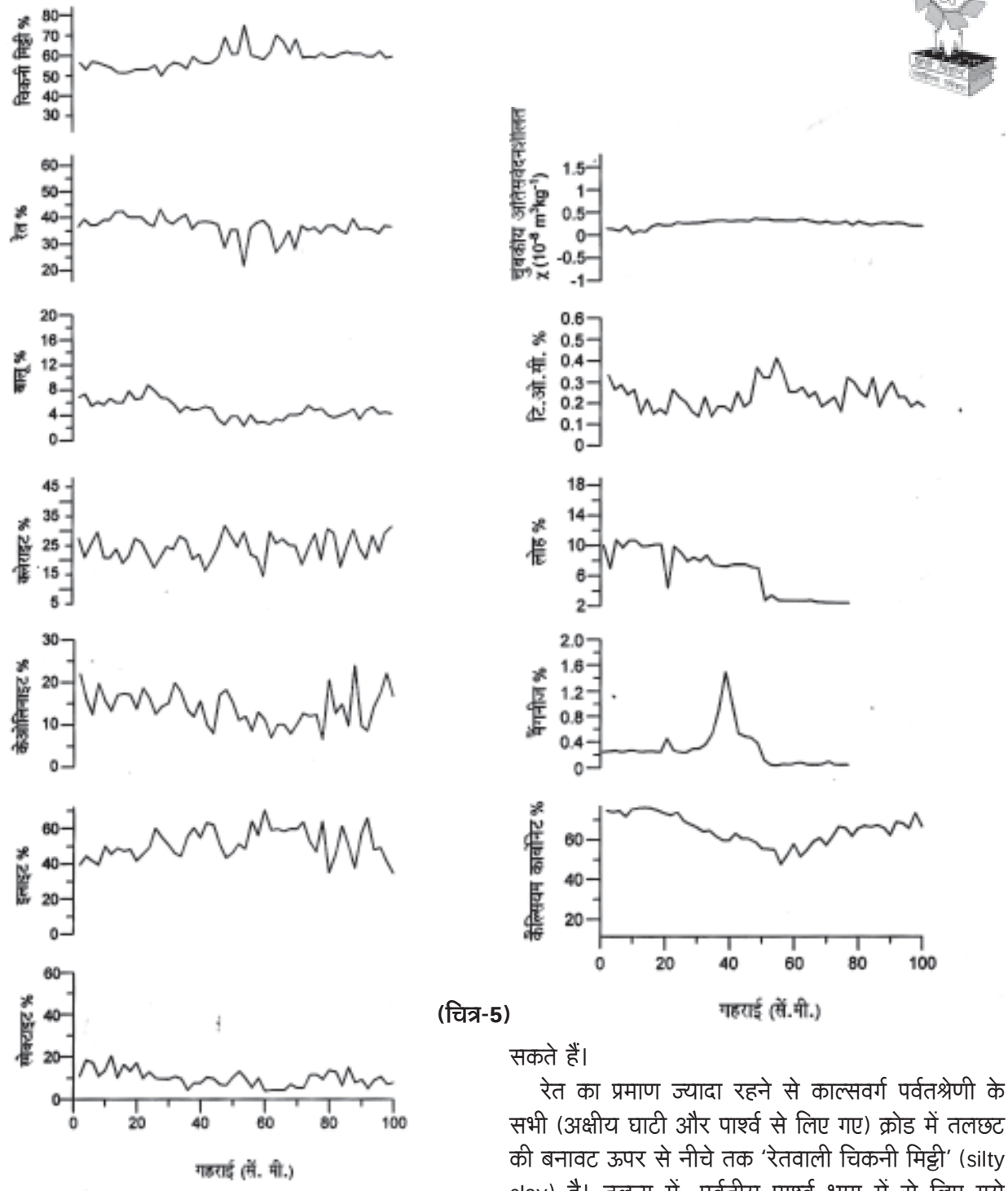

(चित्र-5)

छोड़कर बाकी सभी में पोटैसियम की मात्रा नीचे की तरफ बढ़ती गई।

यूरेनियम-थोरियम काल-निर्धारण (dating)

अक्षीय घाटी के क्रोड में $^{150}Th_{ex}$ की सतह से सीधे 140 सें.मी. नीचे तक तलछट संचयन दर 3.03 + 0.14 सें.मी. प्रति 1000 साल निर्धारित की गई (चित्र-6) इस हिसाब से सतह से 5 मी.नीचे के तलछट 165000 साल पुराने हो सकते हैं।

रेत का प्रमाण ज्यादा रहने से काल्सवर्ग पर्वतश्रेणी के सभी (अक्षीय घाटी और पार्श्व से लिए गए) क्रोड में तलछट की बनावट ऊपर से नीचे तक 'रेतवाली चिकनी मिट्टी' (silty clay) है। तुलना में, पर्वतीय पार्श्व भाग में से लिए गये तलछट में इलाइट ज्यादा (40-50%) और स्मेक्टाइट कम (<20%) है, परंतु अक्षीय घाटी में इलाइट कम (30-40%) और स्मेक्टाइट ज्यादा (30-40%) है। सिंधु नदी से पानी के साथ आनेवाले तलछट में और ईरान से हवा में आनेवाले तलछट, में ज्यादातर इलाइट और क्लोराइट होने के कारण अरब सागर के तलछट कार्ल्सवर्ग पर्वतश्रेणी में जमा होने के कारण ही उनमें इलाइट और क्लोराइट की मात्रा उच्च रही

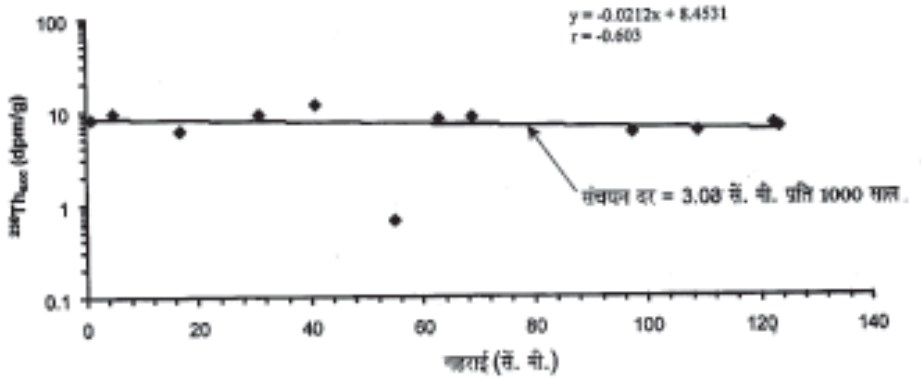

(चित्र-6)

है। इसका एक और अच्छा प्रमाण अरब सागर के सबसे दक्षिणी (5⁰NLat) तलछट में स्मेक्टाइट (<20%) और उत्तरीय कार्ल्सवर्ग पर्वतश्रेणी के पार्श्व तलछट में स्मेक्टाइट (10-20%) एक समान होने से मिलता है। पोटैसियम (K) धातु की मात्रा सभी क्रोड में नीचे की तरफ बढ़ने के कारण कार्ल्सवर्ग पर्वतश्रेणी के तलछट उष्णदेशीय प्रदेश (दक्षिण भारत और अफ्रीका) से आने की संभावना प्रकट करते हैं।

कार्ल्सवर्ग पर्वतश्रेणी के तलछट आच्छादित इलाके में छोटे आकार के ज्वालामुखीय पत्थर या उनके अंश नहीं मिले। तलछट के बालू में ज्वालामुखीय टुकड़ों का अभाव रहा। ज्वालामुखी सक्रिय होने से ऐसे टुकड़ों की संख्या में अक्सर बढ़त होती है. शायद इसी कारण से चुंबकीयता अतिसंवेदनशीलता (X_{lf}) के आंकड़े बहुत कम मिले और उनमें पीक का भी अभाव रहा। सभी क्रोड में मैंगनीज की रुपरेखा (profiles) व सार्थक संवर्धन (significant enrichment) का भी अभाव रहा। इसलिए, कार्ल्सवर्ग पर्वतश्रेणी के तलछट दिखनेवाले हिंद महासागर जैसे समुद्रतल पर सामान्य तलछट लगते हैं और मैंगनीज के नुकीले पीक ज्यादा तर डायजेनेटिक प्रणाली के अपचयन (oxidation) के सहयोगी (fronts) लगते हैं। एल्यूमिनियम,मैंगनीज और लौह के तिकोनी आकृति में, कार्ल्सवर्ग पर्वतश्रेणी के तलछट का क्षेत्र प्रशांत महासागर के तलछट के समान होना दोनों में समान गुणस्वभाव (properties) होने की ही पुष्टि करता है। (चित्र-7)

सभी क्रोड में मैंगनीज और लोह की असमान रुपरेखा तथा टीओसी का कैल्सियम कार्बोनेट और मैंगनीज के साथ विपरीत रिश्ता होना, डायजेनेटिक प्रभाव का संकेत दिखता है। तलछट में ज्यादा यूरेनियम की मात्रा भी इसी डायजेनेटिक संघटन (mobilization) के तरफ इंगित करती है, जिसके कारण 10,25, 45,60 और 80 सें.मी. के दरम्यान अनुकूल (consistent) पीक नजर आते हैं।

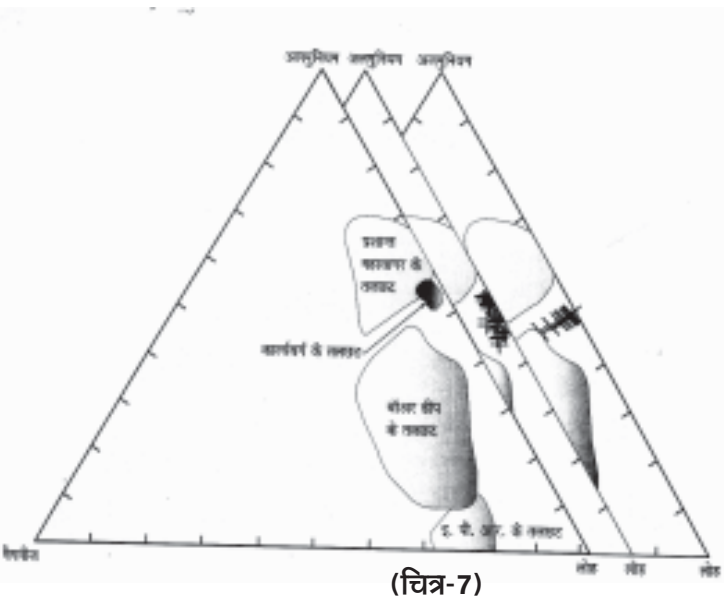

(चित्र-7)

निष्कर्ष

कार्ल्सवर्ग पर्वतश्रेणी के तलछट में चिकनी मिट्टी की खनिजीय (mineralogical), भू-रासायनिक (geochemical) और यूरेनियम-थोरियम समस्थानिकों के (isotopic) अध्ययन से महत्वपूर्ण जानकारी सामने आई है। काल्सवर्ग क्षेत्र में अरब सागर, और दक्षिण भारत एवं अफ्रीका जैसे उष्णदेशीय प्रदेश से तलछट आने की संभावना अधिक है, जो 3 सें.मी. प्रति 10000 वर्ष की दर से जमा हो रही है। इलाइट की प्रचुरता, कम मैगनीज, बहुत कम चुंबकीय अतिसंवेदनशीलता (X_{lf}) सामान्य टीओसी, अत्यधिक कैल्सियम कार्बोनेट, और ज्वालामुखीय अंश का अभाव, आदि कार्ल्सवर्ग पर्वतश्रेणी के तलछट की विशेषता है।

डॉ.होमी भाभा हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता 2009 (इतर हिंदीभाषी) में प्रोत्साहन पुरस्कार प्राप्त

रेशम से नायलॉन तक

- डॉ. यशवंत नाइक -
पी डी डी, भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र, मुंबई-85

वानस्पतिक रेशेः- ये विभिन्न प्रकार के पेड़ पौधों से प्राप्त किए जाते हैं। इस प्रकार से प्राप्त रेशे सेल्युलोज आधारित बहुलक पदार्थ होते हैं। इन बहुलक पदार्थों को उत्पादन विभिन्न पेड़-पौधे,पानी तथा कार्बन डाय आक्साईड को सूर्य के प्रकाश में अवशोषित कर बनाते हैं। इस प्रकार के वानस्पतिक पदार्थों से प्राप्त रेशों का मनुष्य के विकास में उल्लेखनीय योगदान है। प्राकृतिक स्त्रोतों के अतिरिक्त कृत्रिम रेशों के निर्माण एवं उपयोग के बारे में इस लेख में चर्चा की गयी है।

मानव जीवन आदि काल से ही अन्य जीवों की तुलना में उत्तम रहा है। उसने स्वयं को प्राकृतिक आपदाओं तथा कठोर मौसम से बचाये रखने के लिए निरंतर नये उपाय खोजें। मानव सभ्यता का अध्ययन कर इस बात का पता लगाना अत्यंत कठिन होगा कि मानव ने रेशों का उपयोग सर्वप्रथम कब किया। किन्तु यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगा कि मानव ने रेशों का उपयोग ज्ञात इतिहास के पूर्व से ही प्रारंभ कर दिया था। मनुष्य के अतिरिक्त कई पशु तथा कीट पतंगे, रेशों का उपयोग अपना घोसला बनाने के लिए (जैसे कुछ पक्षी) कुछ जाल बिछाने के लिए (मकड़ी) तथा कुछ प्रजनन काल में अपने नवजात शिशुओं को सुरक्षा प्रदान करने के लिए करते हैं (जैसे तितली, रेशम के कीड़े इत्यादि)। कुछ जानवर तो रेशों का उपयोग सकरे छेदों से कीड़ों को बाहर खीचने के लिए करते हैं। जैसे चिम्पाजी।

मनुष्य ने सदा ही प्राकृतिक धरोहरों का उपयोग अपने जीवन को आरामदायक बनाने में किया है। विभिन्न रेशे भी इससे अछूते नहीं हैं। आज प्राकृतिक रेशे जैसे कपास, कागज, ऊन, रेशम फ्लेक्स इत्यादि विनाश के कगार पर हैं। अपने उपयोग व अपनी वैज्ञानिक जिज्ञासा को पूर्ण करने के लिए मनुष्य इन रेशों का दोहन करता रहा। परिणाम स्वरूप आज इसे विलुप्त होने से बचाने के लिए सन् 2009 को 'प्राकृतिक रेशे का वर्ष' के रूप में मनाया जा रहा है। मनुष्य के अमानवीय कृत्यों के कारण कई जानवर कीट-पतंगे तथा वनस्पति विलुप्त हो रहे हैं। यह मानव के द्वारा इन जीवों पर किए जा रहे अमानवीय अत्याचारों के कारण हो रहा है। कृत्रिम प्रजनन, जिनेटिक वंशानुगत बदलाव लाने के कारण आज कई वनस्पतियां जो कि उत्तम रेशों के स्रोत थे, विलुप्त हो चुकी हैं। कई जानवर जैसे भेड़, बकरीयां, ऊंट इत्यादि की नस्लें समाप्त हो रही हैं। उनपर हो रहे जिनेटिक प्रयोगों के कारण भी ये जानवर अपनी असली पहचान खो रहे हैं। अतः मानव की विकास गाथा इन कीट पतंगों के साथ ही स्वयं मनुष्य के लिए अत्यंत विनाशकारी हो सकती है।

मानव ने रेशों का उपयोग सर्वप्रथम ऊन के रूप में किया, ऐसे प्रमाण इतिहास में मिलते हैं। इतिहासकारों का मानना है कि मनुष्य ने ऊन का उपयोग पाषाण युग के पूर्व से ही शुरू कर दिया था। पाषाण युग के दौरान ऊन से कपड़ा बनाने के लिए एक विधि अपनाई गई। इसमें ऊन से कपड़ा प्राप्त करने के लिए, सर्वप्रथम ऊन को गर्म पानी में भिगोया जाता है। जिसमें ऊन के रेशे आपस में चिपक जाते हैं। गर्म ऊन को दो पत्थरों के बीच दबा कर कपड़ा प्राप्त किया जाता था. लगभग 5000 वर्ष (ईसा पूर्व) से ऊन का व्यापार हो रहा है। इसी दौरान मनुष्य ने भेड़ो को पालना सीखा। भेड़ों का प्रजनन कर ऊन का उद्योग मध्य एशिया में होने लगा। बाद में यह विश्व के अन्य देशों में भी फैलने लगा। यह इसलिए संभव हो सका, क्योंकि भेड़े विभिन्न जलवायु में अपने आप को आसानी से ढाल लेती हैं व उस मौसम में जीने के लिए

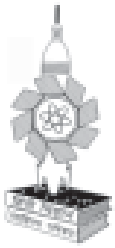

सक्षम होती हैं। सर्वप्रथम मेरिनो किस्म की भेड़ एशिया प्रदेश से यूरोप भेजी गई। आज मेरिनो किस्म की भेड़ें, रेशे (ऊन) प्राप्त करने के लिए विश्व के प्रत्येक भाग में पाली जाती हैं। न्यूजीलैण्ड में सर्वाधिक भेड़े लगभग 5 अरब भेड़े हैं। मेरिनो जाति की इन जंगली भेड़ों की पीठ पर दो प्रकार के बाल उगते हैं। लंबे व मोटे तथा दूसरे बारीक व मुलायम (जो कि छोटे आकार के होते हैं) ये मुलायम व पतले बाल भेड़ को ठंड से बचाये रखते हैं। इन बालों को मनुष्य अपने आपको ठंड से बचाने के लिए समय समय पर काट कर ऊनी कपड़े बनाने के लिए निकालता रहता है। आज मानव ने इन भेड़ों में भी जिनेटिक बदलाव लाये हैं ताकि उनकी पीठ पर केवल नर्म व मुलायम बाल ही उगें।

ऊन के अलावा अन्य कई रेशे पेड़ पौधों से प्राप्त होते हैं जिसका मनुष्य के विकास में महत्वपूर्ण योगदान है। इन रेशों का उपयोग मनुष्य ने अपने घर, कपड़े तथा रस्से बनाने के लिये किया। इतिहास में इस बात के प्रमाण नहीं मिले हैं कि मनुष्य ने इन पेड़ पौधों की खेती करना कब प्रारंभ किया। किन्तु यह ज्ञात होता है कि हेम्प नामक पौधा सबसे पुराना वनस्पति है जिसके उपयोग से उन्नत किस्म के रेशे मनुष्य ने प्राप्त किये। इसे कई सदियों पूर्व दक्षिण एशिया के प्रांतों में उगाकर रेशे प्राप्त किये। यह कार्य लगभग 4500 वर्ष पूर्व चीन में भी पहुंचा। आज चीन में सर्वाधिक हेम्प की खेती होती हैं किंतु अन्य जगहों पर इसके विलुप्त होने का भय हैं। फ्लेक्स की खेती सर्वप्रथम मिश्र में 3400 वर्ष पूर्व होने के प्रमाण मिलते हैं। लगभग इसी काल में रेशो से कपड़े बुननें की मशीनें खोजी गयी।

भारतवर्ष में कपास से कपड़ा बुनने का कार्य सर्वप्रथम 3400 वर्ष ईसा पूर्व हुआ था। हिंदू संस्कृति के कई ग्रंथों में एक हजार पांच सौ वर्ष ईसा पूर्व कपास के कपड़े बनाने के प्रमाण मिलते हैं। इजिप्ट में कपास उगाने का इतिहास केवल 600से 700 वर्ष पुराना ही है। जहां से यह यूरोपीय देशों से (इसा पूर्व) होते हुए अमेरिका तक पहुंच गया।

रेशम का उत्पादन यानि लार्वा का या यूं कहे मालबेरी रेशम के कीड़ों की खेती सर्वप्रथम सुदूर चीन की महारानी सी-लोंग शीब ने 2700 वर्ष ईसा पूर्व में की थी. उसने पाया कि इन रेशम के कीड़ो द्वारा बनाए गये ककुन को खोल कर लंबे रेशे प्राप्त किए जा सकते हैं, जिनका उपयोग कपड़े बुनने में हो सकता हैं। यहां से रेशम की खेती यानि रेशम के कीड़ों को पालने के उद्योग की शुरूवात हुई। इस उद्योग को हम सेरीकल्यू के नाम से जानते हैं। पहले यह उद्योग गुप्त रखा गया किंतु बाद में यह जापान, एशिया के अन्य प्रदेशों तथा भारतवर्ष में भी फैल गया। कहा जाता है कि एशिया के दो सैलानियों ने कुछ रेशम के कीड़ों के अण्डे तथा मालबरी पेड़ के बीज चीन से चुरा कर अपने देश ले गए, जो बाद में रेशम के उद्योग के रूप में वहां पनप गया। यह कार्य बाई सेशियम राज्य के सम्राट जस्टीनीयन के द्वारा लगभग 525 वर्ष ईसा उपरांत हुआ। बाद में यह इटली, रोम तथा अन्य यूरोपीय देशों में भी फैल गया। उस समय से लेकर आज तक रेशम के कपड़े पहनना एक शान माना जाता हैं। रेशम प्राकृतिक रूप से प्राप्त सभी रेशों में सर्वोत्तम होता हैं। हालांकि इसका उत्पादन अत्यंत जटिल होता है।

18 वीं तथा 19 वीं शताब्दी की औद्योगिक क्रांति के दौर में कई नई उन्नत किस्म की कपड़ा बुनने की मशीनों का आविष्कार हुआ। इन मशीनों का उपयोग स्पिनींग तथा धागों से कपड़ा बुनने के लिए किया जानें लगा।विभिन्न फैक्टरियों में अत्यंत कम लागत पर कपड़े बनने लगे। जिससे इन कपड़ों की कीमत कई गुना गिर गई तथा इन कपड़ों की मांग बढ़ गई। अतः प्राकृतिक रेशों का उत्पादन भी बढ़ गया।

मनुष्य की लालसा ने उसे अत्यंत लोभी बना दिया. जंगलों से पेड़ पौधों की अंधाधुंध कटाई होनें लगी। जिससे प्राकृतिक स्रोत विलुप्त होने लगे। आज प्राकृतिक रेशों की कई प्रजातियां नष्ट हो चुकी हैं। जानवरों पर अत्याचार होनें लगे। उनके शरीर पर उगने वाले बालों पर भी अनुसंधान कार्य होनें लगे। जानवरो में नई नस्ल बनाने के लिए उनमें वंशानुगत बदलाव लाए गये। इसी दौरान वैज्ञानिक कृत्रिम रेशे बनाने में जुट गए। अतंतः सन् 1880 में लकड़ी से प्राप्त सेल्युलोज को घोलनें में सफल हो गए। इस घोल को एक सूक्ष्म छिद्र से अत्यंत दाब से निकाल कर इसके रेशे प्राप्त किये गये। इन रेशो को रेयान के नाम से जाना जाने लगा। जिसे कृत्रिम रेशम भी कहते हैं।

इस प्रकार का कृत्रिम रेशम इंग्लैंड के एक वैज्ञानिक जे. डबल्यू.स्वान ने सर्वप्रथम सन् 1879 में बनाया था. इसी खोज के बाद कृत्रिम रेशम के बने मोजे सर्वप्रथम सन् 1910 के दौरान जर्मनी में बनाए गये। कृत्रिम रेशम के कपड़े अत्यंत गर्म होते हैं। अतः कृत्रिम सिल्क को फ्राँस में ''सास का रेशम'' की संज्ञा दी गई। इस प्रकार बना रेशम पूर्णरूप से कृत्रिम न था। कुछ समय बाद तेल तथा कोयले के उपयोग से कृत्रिम रेशम बनाया गया। जिसे आज नायलॉन के नाम से जाना जाता है। प्राकृतिक रेशो में कपास सबसे महत्वपूर्ण है। यह उद्योगों में सर्वाधिक पसंद किया जाता है। मनुष्य को यह इतना अच्छा लगता हैं कि आज भी लगभग 100 फीसदी लोग अपने आतंरिक कपड़े कपास के बने पसंद करते हैं।

प्राकृतिक रेशों के प्रकार व उनका विभाजन

प्राकृतिक रेशों को दो भागों में बांटा जा सकता है;

1) **वानस्पतिक रेशेः**- ये विभिन्न प्रकार के पेड़-पौधों से प्राप्त किए जाते हैं। इस प्रकार से प्राप्त रेशे सेल्युलोज आधारित बहुलक पदार्थ होते हैं। इन बहुलक पदार्थों का उत्पादन विभिन्न पेड़- पौधे-पानी तथा कार्बन डाय आक्साईड को सूर्य प्रकाश में अवशोषित कर बनाते हैं। इस प्रकार वेः वानस्पतिक पदार्थो में से प्रमुख रेशे है।

अ) बास्ट रेशेः- जिन्हें पेड़ के तने से प्राप्त किया जाता हैं इस श्रेणी में, जूट फ्लेक्स, हेम्प तथा रॉमी आते है।

ब) पत्तों से प्राप्त होने वाले रेशेः- इनमें सीसल, (बांस), हेना क्विन, अबाका तथा इसली प्रमुख हैं।

स) ताड़ तथा कुर्च रेशेः- जैसे नारियल की जटा, पीपल की जटा, राफा, पामीरा, पिसारा इत्यादि।

द) बिजाणु रेशेः- ये फलों तथा बीजों के रूप में प्राप्त होते हैं. जैसे, कपास, कापोक इत्यादि।

वानस्पातिक रेशे सेल्युलोस आधारित होते हैं।

2) **जातव रेशेः**- ये रेशे हमें विभिन्न प्राणियों के बालों से ऊन के रूप में प्राप्त होते हैं। ये कई प्रकार के हो सकते हैं जैसे

ऊनः- यह हमें भेड़ों से प्राप्त होती हैं। उत्तम किस्म के रेशे अंगोलियन भेड़ के बालों से प्राप्त होते हैं। सबसे उत्तम किस्म के रेशे भेड़ की फ्लीस से प्राप्त होते हैं। भारतवर्ष में इसी प्रकार के रेशें काश्मीर के भेड़ों से भी प्राप्त होते हैं। ये रेशे अत्यंत मुलायम होते हैं।

पशुओं से प्राप्त होनें वाले अन्य रेशों में ऊंट की पीठ पर उगनें वाले बाल भी महत्वपूर्ण होते हैं। इसके साथ ही गाय, बैल, घोड़े, सूअर तथा खरगोश की खाल पर उगनें वाले बाल भी मूल्यवान होते हैं। किन्तु सबसे अधिक मूल्यवान रेशे जीव आधारित ही होतें हैं जो कि केटर पिलर द्वारा र्निमित होते हैं व इसी को हम रेशम कहते हैं।

विभिन्न रेशों के सूक्ष्म चित्र

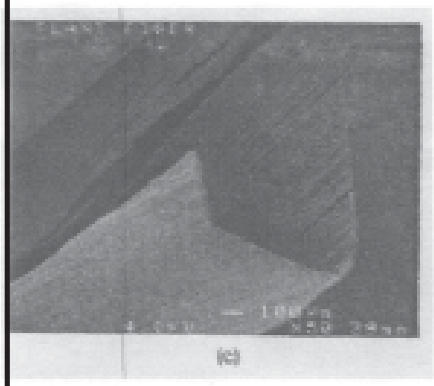

चित्र १, कपास के रेशे जो कि खोखली नलिका के समान होते हैं।

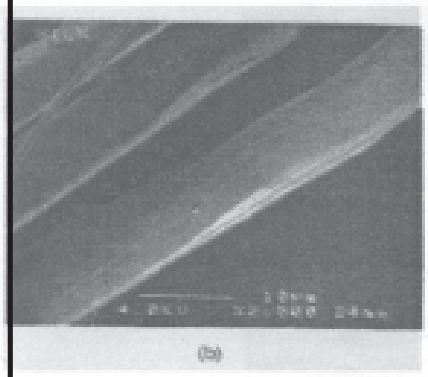

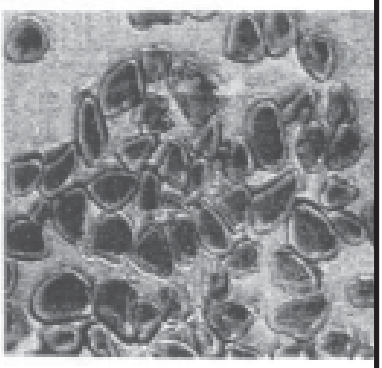

चित्र २ - रेशम के रेशे जो कि त्रिकोणीय होते है।

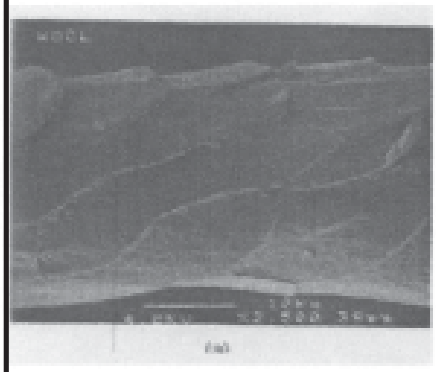

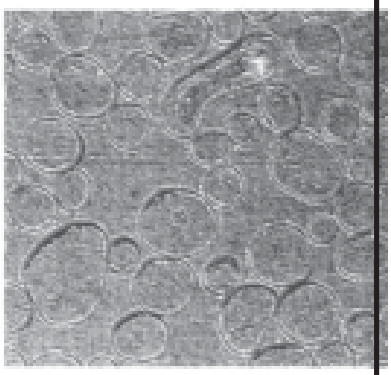

चित्र 3 : a&bउन के रेशे परत दर परत चढ़े होते है तथा ये दो अवयव के बने होते हैं।

एक तीसरे प्रकार के रेशे को हम एस्बेस्टोस के नाम से जानते हैं यह धरती में पाया जाने वाला एक अकार्बनिक पदार्थ हैं जिसका वैज्ञानिक नाम मेग्नेशियम सिलीकेट हैं। एस्बेस्टोस एक ग्रीक शब्द हैं जिसका अर्थ होता हैं 'अभेद्य'। किंतु एस्बेस्टोस का प्रयोग अब नहीं किया जाता क्योंकि यह हमारे फेफड़ों को लिए हानिकारक होता हैं।

प्राकृतिक रेशों का उत्पादन तथा उनके गुणधर्मः-

प्राकृतिक रेशों के उत्पादन तथा विकास के लिए विभिन्न प्राकृतिक रेशों की संरचना का सूक्ष्म अध्ययन किया गया। जैसा कि हम जानते हैं कि वानस्पतिक रेशें सेल्युलोस आधारित होते हैं जबकि जातव रेशे प्रोटीन अणु वाले बहुलक पदार्थ होते हैं। रेशों का स्केनिंग इलेक्ट्रान सूक्ष्मदर्शी यंत्र से अध्ययन करने पर पता चलता हैं कि कपास के रेशे खोखले होते हैं जैसा कि चित्र (1) से स्पष्ट होता है। ऊन जो कि जानवरों से प्राप्त होती हैं त्रिकोणीय काष्ठ के बने धागे के समान होते हैं जैसा कि चित्र (2) से स्पष्ट होता है। किंतु यह देखा गया कि ऊन के रेशों की बनावट एकदम अलग होती है। इसकी बनावट दो अवयवों वाली होती है तथा यह सांप की केंचुले के समान होती है जैसा कि चित्र 3 से स्पष्ट होता हैं। कपास के रेशे खोखली नली के समान होनें के कारण पानी को सोखते हैं। ये 100 फीसदी आर्द्र वातावरण में भी पानी को सोंखने की क्षमता रखते हैं। इसी कारण कपास के बने कपड़े अत्यंत आरामदायक होते हैं। रेशम के बने कपड़े अत्यंत आरामदायक होते हैं, क्योंकि रेशम अत्यंत कठोर किस्म का रेशा होता है। इस रेशे का यंग नियंताक सभी रेशों में अधिक हैं। रेशम के रेशे त्रिकोणीय होते हैं तथा उनकी सतह अत्यंत चिकनी होती है। अतः रेशम के बने कपड़े अत्यंत चमकीले होते हैं तथा प्रकाश में हीरे के समान चमकते हैं।

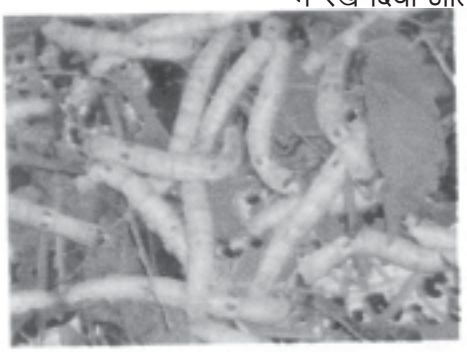

चित्र-४ रेशम के कीड़े मालबरी पत्ते खाते हुए.

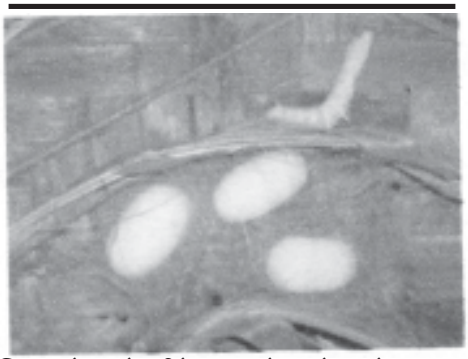

चित्र-५ रेशम के कीड़े द्वारा बुने गए रेशम के ककुन।

वहीं ऊन के रेशे जैसा कि चित्र (3) में दर्शाया गया है सांप की केचुल के समान होने के कारण उन्हें विशिष्ट बनावट देते हैं। दो अवयवों के बने होने के कारण ये अधिक मोटे होते हैं। इसके दो अवयव अलग-अलग रासायनिक पदार्थो के बने होते हैं। जिन्हे परकोर्टेक्स तथा ओर्थोकोर्टेक्स कहते हैं। ये दोनों अवयव अलग-अलग मात्रा में पानी अवशोषित करते हैं। अतः इन प्राकृतिक रेशों की बनावट के आधार पर कृत्रिम रेशे विभिन्न आकार के स्पिनरेट उपयोग कर बनाये जा सकते हैं। जिनका वर्णन आगे दिया गया है।

वानस्पतिक रेशे, पेड़ तथा पौधों को विभिन्न मौसमों के दौरान शक्ति प्रदान करते हैं। ये रेशे पेड़ के तने, टहनियां तथा पत्तों में होते हैं। इसके अतिरिक्त कुछ उत्तम किस्म के रेशे, बीजों के बाल, जैसे कपास, कापोक, नारियल की जटा इत्यादि होते हैं। वानस्पतिक रेशे कई प्रकार के होते हैं जो कि पेड़ पौधों के भिन्न-भिन्न भागों से प्राप्त किए जाते हैं। इनका संक्षिप्त वर्णन नीचे दिया जा रहा है।

बास्ट रेशेः- ये रेशे वृक्षों के तनों से प्राप्त होते हैं. ये रेशे पेड़ के तने में एक दूसरे से गोंद के द्वारा जुड़े रहते हैं। जो पेड़ को सीधे खड़े होने की शक्ति प्रदान करते हैं। रेशों को प्राप्त करने के लिए एक विशेष विधि जिसे रेटिंग कहते द्वारा गोंद को गलाया जाता है। इस प्रक्रिया के दौरान पेड़ के तनों को पानी में डुबोकर रखा जाता हैं या तने को नमी भरे वातावरण में रख दिया जाता है। कुछ दिनों में सूक्ष्म जिवाणु गोंद के अणुओं को विखण्डित कर देते हैं, जिससे रेशे एक दूसरे से अलग हो जाते हैं। इस विधि से रेशे प्राप्त करने में एक से चार सप्ताह तक का समय लग सकता है। तने को सुखाकर उसे झटकने से भी गोंद को अलग किया जा सकता है। पीट-पीट कर इन रेशों को और भी महीन बना लेते हैं।

इस प्रकार प्राप्त रेशे अगर लंबे हों तो उसे यार्न तथा कपड़ा बुनने के लिए प्रयुक्त किया जाता है। छोटे टुकड़ों को 'टोव' कहते हैं। बास्ट रेशों के भौतिक गुण धर्मों की जानकारी तालिका-1 में दी गई है।तालिका से यह स्पष्ट होता है कि बास्ट तथा पत्तों से प्राप्त होने वाले रेशों में अंतर होता हैं। बास्ट रेशे पत्तों से प्राप्त होने वाले रेशों से अत्यधिक बारीक होते हैं. महीनता को 'डेन' में नापा जाता हैं। डेन की मात्रा जितनी कम होगी, रेशे उतने महीन होंगे। बास्ट रेशे पत्तों से प्राप्त होने वाले रेशों से लगभग सौ गुना ज्यादा पतले होते हैं।

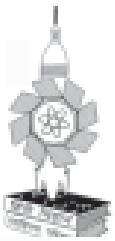

पत्तों से प्राप्त होने वाले रेशेः-

पत्तों के संपूर्ण भाग में लंबे व पतले रेशे फैले होते हैं, जो कि पत्तों के आकार को बनाये रखते हैं। ये रेशे एक चिकने द्रव्य जिसे लिंगनीन कहते हैं के साथ घुले मिले रहते हैं। लिंगनीन को रगड़कर निकालने पर रेशे प्राप्त किये जाते हैं। जैसा कि पहले भी बताया जा चुका हैं पत्तों में विद्यमान रेशे बास्ट रेशों की तुलना में अधिक मोटे व कठोर होते हैं। बास्ट तथा पत्तों से प्राप्त होने वाले वनस्पतिक रेशों के फाइब्रिल असंख्य कोशिकाओं के बने होते हैं जो कि एक दूसरे से जुड़े होते हैं। इन कोशिकाओं का आंतरिक भाग खोखला होता हैं जिसे 'ल्यूमन' कहते हैं जो कि ग्लूकोज से बना बहुलक पदार्थ सेल्युलोस होता है। सेल्युलोस के रेशे क्रिस्टलाईन होते हैं,किंतु इनमें कुछ अंश अमार्फस भी होता है। ये पानी में अघुलनशील तथा प्रकृति में प्राप्त सभी कार्बनिक पदार्थो में सर्वाधिक पाया जाता है। मनुष्य इसे खाकर पचा नहीं सकता। किंतु कुछ जीवाणु जो कि गाय, घोड़ा, भेड़ इत्यादि के पेट में विद्यमान होते हैं, सेल्युलोस को पचाने में सक्षम होते हैं। लींगनीन के अणुओं की संरचना अत्यंत जटिल होती हैं। ये सेल्यूलोस से अलग होते हैं तथा ये कई **पेक्टिक** पदार्थो का मिश्रण होता है. जैसे, गोंद, रेजिन, मोम, शक्कर, वसा, तेल स्टार्च, अल्केलाईड, टेनिन इत्यादि, विभिन्न वानस्पतिक रेशों में विद्यमान विभिन्न घटकों की जानकारी तालिका- 2 में दी गई हैं।

कुछ महत्वपूर्ण ऐतिहासिक वनस्पति से प्राप्त रेशों की जानकारीः-

फ्लेक्स- अलसी के पौधे को लीनम युसीतातीसोमम कहते हैं। इसकी खेती वर्ष में एक बार होती हैं। इसे उगाने के लिए गर्म व नमी युक्त वातावरण आवश्यक होता हैं। इस प्रकार का वातावरण बेल्जियम, हालैण्ड, लक्जमवर्ग इत्यादि देशों में पाया जाता है। अतः फ्लेक्स की खेती इन्हीं देशो में आज भी सर्वाधिक होती है। पौधे को पानी में गला कर प्राप्त होने वाले फ्लेक्स के रेशे उत्तम किस्म के होते हैं, जिनका उपयोग कपड़ा बुननें के लिए किया जाता हैं। मोटे धागों का उपयोग जूते बनाने के लिए किया जाता है। फ्लेक्स की बीजों से लिल्सीड तेल तथा कागज (ठोस) तैयार किया जाता है।

रामीः- रामी एक पारंपरिक रेशा है जिसका उपयोग सदियों पूर्व चीन के लोग शवों को दफनाने के लिए किया करते थे। पश्चिम के देशों में रामी के बारे में पर्याप्त जानकारी नहीं थी। आज रामी तथा कपास के रेशों के मिश्रण से उत्तम किस्म के परिधान बनाए जाते हैं जो कि सभी मौसमों में अत्यंत आरामदायक होते हैं। रामी के रेशे अत्यंत बारीक

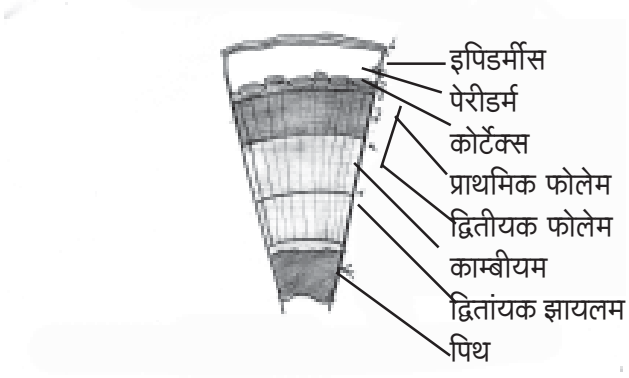

चित्र - 6 लकड़ी की संरचना व अवयव

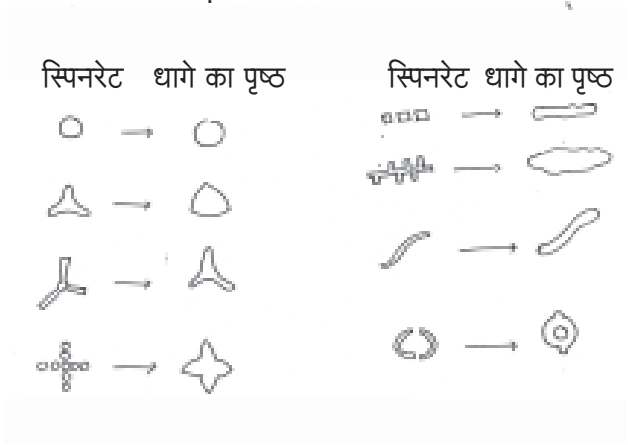

चित्र - 7 कृत्रिम रेशे बनाने के लिए प्रयुक्त स्पिनरेट का प्रकोष्ठ व उनसे बनने वाले कृत्रिम रेशों के पृष्ठ भाग की बनावट.

(रेशम के समान) होते हैं किंतु उन पर जंतुओं का कोई असर नहीं होता। अतः जीव जंतु रामी के बने कपडों को बर्बाद नहीं कर पाते। पानी सोखने पर रामी मिश्रित कपड़े और भी मजबूत हो जाते हैं। पानी के अवशोषण पर यह कपड़ा सिकुड़ता भी नहीं हैं। किंतु रामी के रेशे कड़क होने के कारण इसके बने कपड़ों में झुर्रियां अधिक पड़ती हैं।

लकड़ी के रेशे व उनके उपयोगः-

लकड़ी का उपयोग मनुष्य पाषाण युग से कर रहा हैं। लकड़ी का उपयोग घर, कागज, ईंधन तथा औजार बनाने के लिए होता है। आज के युग में लकड़ी का उपयोग सेल्युलोज प्राप्त करने के लिए भी किया जाता है। प्राप्त सेल्युलोज से विभिन्न रासायनिक संश्लेषण विधियों द्वारा कई प्रकार के आधुनिक रेशे जैसे पोलिएस्टर इत्यादि प्राप्त किये जाते हैं।

आज लकड़ी का उपयोग कागज बनाने के लिए किया जा रहा है। अत्यधिक खपत के कारण जंगलों की अंधाधुंध

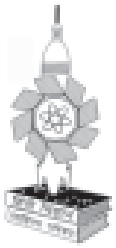

कटाई हो रही हैं। हवा में ऑक्सीजन की मात्रा घटती चली जा रही है। हवा में Co_2 गैस अधिक मात्रा में होने के कारण वातावरण गर्म हो रहा है। पानी में Co_2 के अवशोषण के कारण पानी भी अम्लीय होता जा रहा है। पानी में आक्सीजन की कमी के कारण कई जलीय प्रजातियां नष्ट हो रही हैं।

लकड़ी का घनत्व पानी से कम होता है तथा यह विद्युत तथा ताप की कुचालक होती हैं। इसकी रासायनिक स्थिरता भी अधिक होती है। लकड़ियां दो प्रकार की होती हैं नर्म अथवा सख्त। जैसा कि चित्र 6 में दर्शाया गया है, लकड़ी की संरचना विभिन्न खिंची हुई कोशिकाओं की बनी होती हैं। ये कोशिकाएं सेल्युलोज के अणुओं से बनी होती हैं जिन्हें लींगनीन आपस में बांध कर रखता है। अतः यूं कहे कि लकड़ी प्रकृति में मिलनें वाला एक समष्टिक पदार्थ है। इस पदार्थ में दो प्रकार की कोशिकाएं होती हैं। एक में पेड़ के लिए आवश्यक भोजन का भंडार किया जाता है तथा दूसरा अवयव जो कि एक वर्ष तक ही जीवित रहता है, उसे इनचिमा कहते हैं. ये कोशिकाएं पेड़ को खड़े रहने की शक्ति प्रदान करती हैं अतः इन्हें प्रोसइन्चीमा कहते हैं। ये कोशिकाएं भी एक वर्ष तक अपना कार्य करती है। पेड़ के लिए भोजन की व्यवस्था करने वाली कोशिकाओं के बाहरी पृष्ठ को फ्लोएम कहते है। पत्तों में प्रकाश संश्लेषण के द्वारा बने उत्पाद इन कोशिकाओं से होते हुए पत्तों की जड़ों तक पहुंचते हैं। इसके विपरीत पानी तथा विभिन्न आवश्यक खनिज लवण जड़ो से पत्तों तक इन्हीं कोशिकाओं के आंतरिक भाग से होते हुए पहुंचते हैं। चित्र-6 में एक पेड़ के तने की संरचना दिखाई गई है।

पेपर बनाने के लिए लकड़ी को पानी में गला कर लुगदी तैयार की जाती है। यानि इस क्रिया में लकड़ी से सेल्युलोज के रेशे प्राप्त किए जाते हैं। यह लकड़ी को बारीक पीस कर अथवा लकड़ी पर रासायनिक क्रिया द्वारा प्राप्त किया जाता है। जिससे लींगनीन तथा अन्य पदार्थ घुल जाते हैं। अतः केवल सेल्युलोज अघुलनशील होने के कारण ठोस रूप में विद्यमान रहता है। जिसे छान कर अलग कर लिया जाता है।

लकड़ी से कागज सर्वप्रथम चीन में 105 वर्ष (ईसा पूर्व) बनाया गया था। बाद में यह विधि भारतवर्ष तथा अन्य यूरोपीय देशों में फैली। पेपर शब्द की उत्पत्ति इजिप्ट के एक पौधे से होती है जिसका नाम साईपरस पेयरस हैं। इस पेड़ का उपयोग कागज के समान वस्तु बनानें के लिए किया जाता था। उस समय कागज बनानें के लिए पौधे तथा पेड़ों से रेशे अलग नहीं किए जाते थे। रेशों की एक परत रखकर उसपर दूसरी परत समकोण दिशा में रखी जाती थी। पानी छिड़ककर इस प्रकार बनी परत पर वजन रख दवाब दिया जाता था जिससे पेपर बनकर तैयार होता था। आज लकड़ी से पहले पल्प निकाला जाता हैं. जिसका उपयोग पेपर बनाने में होता है।

आधुनिक पेपर कैसे बनाया जाता है?

पेपर बनाने के लिए लकड़ी को पानी में गला कर लुगदी तैयार की जाती है। यानि इस क्रिया में लकड़ी से सेल्युलोज के रेशे प्राप्त किए जाते हैं। यह लकड़ी को बारीक पीस कर अथवा लकड़ी पर रासायनिक क्रिया द्वारा प्राप्त किया जाता है। जिससे लींगनीन तथा अन्य पदार्थ घुल जाते हैं। अतः केवल सेल्युलोज अघुलनशील होने के कारण ठोस रूप में विद्यमान रहता है। जिसे छान कर अलग कर लिया जाता है।

सफेद कागज बनाने के लिए रासायनिक विधि से लुगदी तैयार की जाती है। लकड़ी को बारीक पीस कर उसे गर्म पानी में मिलाया जाता है। इस मिश्रण में सोडियम सल्फाईड तथा केल्शियम सल्फाईड मिलाकर भट्ठी में पकाया जाता है। इस प्रकार लिंगनीन जैसे जल्द घुल जाते हैं। प्राप्त लुगदी का उपयोग चमकीले व शुभ्र कागज बनाने के लिए किया जाता हैं। इस प्रकार के सेल्युलोज के रेशों से बने कागज की मजबूती अधिक होती है तथा इसे लंबे समय तक उपयोग में लाया जा सकता है। आवश्यकता पड़ने पर लुगदी पर क्लोरीन की क्रिया से उसे और भी उज्वल बनाया जा सकता हैं। प्राप्त लुगदी जो कि सेल्युलोज तथा पानी का होता है, अत्यधिक दाब लगाकर फैला दिया जाता है। जिससे अवशोषित पानी निकल जाता है। इस प्रकार लकड़ी से प्राप्त सेल्युलोज रेशों के फाईब्रिल्स अत्यंत लचीले होते हैं। प्राप्त कागज पर रंगाई पुताई कर और सजाया जा सकता है। केवल सेल्युलोज से बना पेपर ही पानी सोखता है। अतः सेल्युलोज में स्टार्च, गोंद, केसोन, तथा रेजीन जो कि पाईन वृक्ष, से प्राप्त होते हैं,पल्प में मिलानें से पेपर कम पानी सोखता है। आज इस कार्य के लिए मोम तथा कृत्रिम रेजीन का उपयोग कागज बनाने के लिए किया जा रहा है। अंत में कागज को उचित आकार में

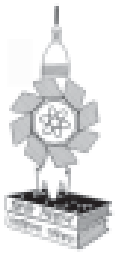

काटा जाता हैं। कागज में प्रयुक्त सभी अवयव उचित अनुपात में होना आवश्यक होता है। खाद्य पदार्थों को भरने के लिए बने डिब्बों के कागज में प्रयुक्त होने वाले अवयव उचित मात्रा होना चाहिए तथा इसके उपयोग के लिए खाद्य मंत्रालय के विभागों से आवश्यक अनुमति प्राप्त करनी पड़ती है। इसी प्रकार नोट तथा विभिन्न न्यायालयों में प्रयुक्त होने वाले लीगल पेपरों के लिए उत्तम किस्म के कागज का उपयोग होता है। अतः इस प्रकार के उपयोग के लिए कागज, कपास अथवा लिनेन के रेशों से बनाए जाते हैं। ये रेशे कपड़ा मिलों से आसानी से मिल जाते हैं।

जातव रेशों का उत्पादन व विकास

जातव रेशों के अंतर्गत, ऊन, रेशम इत्यादि आते हैं. जातव रेशे प्रोटीन अणुओं से बने बहुलक पदार्थ होते हैं। जैसा कि हम जानते हैं, प्रोटीन के अणुओं की संरचना अत्यंत जटिल होती हैं। ये लंबी श्रृखंला के अमिनों अम्ल होते हैं, जिनमें कार्बन, नाइट्रोजन, गंधक, फास्फोरस तथा आक्सीजन के परमाणु होते हैं। किसी भी जातव रेशे में सेल्युलोज नहीं होता। इनकी रासायनिक स्थिरता कम होती हैं। अशुद्ध वातावरण, खराब मौसम में इनके खराब होनें का अंदेशा होता है। प्राणियों से प्राप्त होने वाले इन रेशों के निष्कर्षण के पश्चात इन रेशों को लपेट कर यार्न बनाया जाता है। इस कार्य के लिए रेशों को एक दूसरे के समानांतर जमा कर एक रिबन का रूप दिया जाता है तथा रिबन को तीव्र गति से घुमाया जाता है। जिससे रेशों से धागा तैयार हो जाता है। धागों का उपयोग कपड़ा बुनने के लिए किया जाता है।

ऊनः- ऊन जैविक प्रोटीन केराटीन की बनी होती हैं। यह प्रोटीन प्राणियों की चमड़ी के ऊपरी भाग में होता है। केराटीन, पानी में अघुलनशील होता है तथा इस पर प्रोटोलाइटिक एंजाइम की कोई क्रिया नहीं होती है। ऊन को 90^0c तापमान पर पानी में गर्म करने पर ऊन के रेशे सिकुड़ने लगते हैं। यह विभिन्न अणुओं के बीच विद्यमान बाण्ड के टूटने के कारण होता हैं। ठंडा होने पर ऊन पुनः अपनें आकार में आ जाती हैं।

ऊन के रेशे कपास, लिनन, रेशम या रेयान से मोटे होतें हैं। ऊन के रेशों की त्रिज्या लगभग 7 से लेकर 30माइक्रोन होती हैं, जो कि इनकी लंबाई पर निर्भर करता है। महीन ऊन के रेशों की लंबाई लगभग 4-7.5 सेन्टीमीटर होती हैं तथा मोटे ऊन के रेशों की लंबाई लगभग 30 से.मी. तक हो सकती है। वानस्पतिक रेशों की तुलना में ऊन के रेशे पानी में भीगने पर जल्द टूट जाते हैं। ऊन के रेशे कुछ हद तक लचीले होते हैं। इसीलिए ऊन के बने कपड़ों में झुर्रियां नहीं पड़ती। ऊन खराब मौसम में जल्दी खराब हो जाती हैं। कीड़े मकोड़े ऊन को खाते रहते हैं। ध्यान रहे सोडे के पानी में धोने तथा अधिक तापमान होने पर ऊन खराब हो जाती हैं।

रेशमः- रेशम के ककुन एक विशिष्ट प्रकार का लार्वा (जिसे बोम्बीक्स मोरी के नाम से जाना जाता है) बुनता है। रेशम के ये रेशे भी प्रोटीन के बहुलक अणुओं के बने होते हैं। इन रेशों मे लगभग 80 फीसदी फाईब्रोइन होता है। इसी फाइब्राईन से रेशे बनते हैं। इसके अलावा रेशम के रेशों में कई अन्य घटक जैसे मोम, वसा, लवण, राख इत्यादि होते हैं।

बाम्बोक्स मूरी नामक इस रेशम के कीड़े की जीवन यात्रा डिस्क के आकार के अंडों के भेदन के साथ ही शुरू होती है। जिन्हें इन्क्यूबेटर में 27^0c तापमान पर रखा जाता हैं। अंड़ों के पकने व उसके फूटने में लगभग दस दिन का समय लगता है। अंडों से निकलने वाले इन केटर पिलर्स की औसत लंबाई लगभग 90 मि.मि.तथा वजन 3 मिलीग्राम के करीब होता है। इन केटर पिलर्स को मालबरी पेड़ की पत्तियों का भरपेट भोजन दिन में पांच बार कराया जाता है। चित्र-4 में ऐसे ही कुछ रेशम के कीड़े मालबरी के पत्ते खाते हुए दिखाये गये है। इस प्रकार लगभग 6 सप्ताह के बाद यह लार्वा पत्ते खाना बंद कर देता है, जिसके कारण यह थोड़ा सिकुड़ जाता हैं। जब यह अपना सर जोर-जोर से घुमाने लगे तो यह समझ जाना चाहिए कि केटर पिलर अब रेशम के ककून बुननें के लिए तैयार है। ऐसे केटर पिलर्स को एक अलग कक्षदार जगह पर स्थानांतरित कर दिया जाता है। जहां यह पहले एक जाला बुनते हैं तथा जाले के अंदर घूम-घूम कर अपनें जबड़े पर बने सूक्ष्म छिद्र (जिसे स्पिनरेट कहते हैं।) से लार निकालकर अपने सर के गोल-गोल घुमाकर एक अंडाकार गेंद के समान आकार में रेशम के रेशे को लपेटता है। यह ककुन, वह अंग्रेजी के '8' के आकार में लपेटता हैं। ककुन के पूर्ण बनने पर यह बादाम के आकार का दिखाई देता है। जैसा कि चित्र-5 में दर्शाया गया है।

सिल्क के इन कीड़ो के स्पिनरेट में दो छिद्र होते हैं जोकि उसके जबड़ों के नीचे होते हैं। यह कई चिटीन तस्तरियों के बने होते हैं। जो कि लार को दबाव देकर रेशे में परिवर्तित करते हैं। रेशम दो धागों का बना होता है। इसको बेव कहते हैं तथा दो धागों को ब्रीन्स कहा जाता है। स्पिनरेट में आनें पर ये दोनों ब्रीन्स गोंद द्वारा आपस में जुड़ जाते हैं। यह गोंद रेशम के धागे के ऊपर एक परत के रूप में होता है। धागे पर अन्य ग्लैण्ड से अम्ल गिरता है तथा हवा के दबाव व प्रभाव से यह सुखने लगता है। सामान्य अवस्था में ककुन

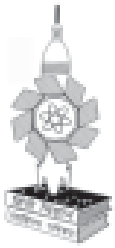

के अंदर विद्यमान 'किसलीस' मोथ का रूप धारण करने में लगभग दो सप्ताह का समय लेता है। ककुन पर यह मोथ क्षारीत लार छिड़ककर बाहर निकलने के लिए एक छिद्र बना लेता है। इस प्रकार से उत्पन्न नवजात नर तथा मादा केटर पिलर तीन दिनों के अंदर 400 से 500 अंडे देती है। किंतु रेशम के धागे प्राप्त करने के लिए ककुन बनाते ही रेशम के कीड़े को गर्म हवा अथवा पानी डाल कर समाप्त कर दिया जाता है। इस क्रिया को 'स्टोवींग' कहते हैं।

किंतु अगर के कीड़े उत्पन्न करना हो तो स्टोवींग न कर अंडों को पकाया जाता है व उससे केटर पिलर यानि रेशम के कीड़ो का उत्पादन किया जाता है। एक ककुन के धागे की लंबाई लगभग 600 से 900 मीटर होती है। इस प्रकार एक किलो ग्राम रेशम के धागे को प्राप्त करने के लिए लगभग 35 हजार ककुन की आवश्यकता होती है।

मनुष्य सदैव ही विकासशील प्राणी रहा है। उसने कृत्रिम रेशों के उत्पादन के साथ-साथ प्राकृतिक रेशों को उन्नत की बनाने का प्रयास किया।

मनुष्य द्वारा निर्मित कृत्रिम रेशे दो प्रकार के होते हैं - अर्ध कृत्रिम तथा पूर्ण रूपेण कृत्रिम

तालिका 1: कुछ महत्वपूर्ण रेशों के गुणधर्म

रेशे का प्रकार	महीनता (den)	घनत्व (g/den)	टेन्साइल बल (MPa)	रंग
		पेड़ के तने से प्राप्त होने वाले रेशे		
जूट	20	3	39	सफेद से भूरा
फ्लेक्स	5	5	66	सफेद से भूरा
हेम्प	6	4	52	सफेद से धुसर भूरा
रेमी	5	5	67	सफेद से धुसर भूरा
		पेड़ के पत्तों से प्राप्त होने वाले रेशे		
बांस	290	4	51	किमी सफेद से पीला
हेनेक्वेन	370	3	39	किमी सफेद से लाल भूरा
मनिला हेम्प	190	5	64	किमी सफेद से धुसर
इस्टल	360	3	32	सफेद से लाल पीला
		पेड़ के बीजों से प्राप्त होने वाले रेशे		
कपास	2	3	300	सफेद से धुसर, बैंगनी, नीला, लाल
		जातव रेशे		
ऊन	4-20	2	150	सफेद से धुसर
रेशम	1	4	800	सफेद
		कृत्रिम रेशे		
नायलॉन	5-20	3-10	350-1000	सफेद या पारदर्शी
पोलिएस्टर	1-10	3-10	550-1100	सफेद या पारदर्शी

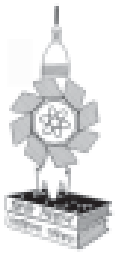

अर्ध कृत्रिम रेशों को कुछ जैविक पदार्थों पर रासायनिक क्रियाओं के द्वारा प्राप्त किया जाता है जिससे बनने वाले रेशे प्राकृतिक रेशों से अधिक अलग प्रकार के गुण धर्म वाले होते है। उदाहरणार्थ प्राकृतिक रूप से प्राप्त सेल्युलोज आधारित रेशों पर अम्ल की क्रिया से पोलिएस्टर का निर्माण किया जाता हैं। पोलिएस्टर के धागे पानी नहीं सोखते जबकि प्राकृतिक सेल्युलोज के रेशे अत्यधिक पानी सोखते हैं।

कृत्रिम रेशों को विभिन्न प्रकार के मोनोमर से, बहुलक पदार्थ बनाकर प्राप्त किया जाता है।

आज बाजार में कई कृत्रिम रेशे उपलब्ध हैं जैसे डेक्रोन, टेरिलॉन, टावीरा, फ्लॉन, निर्लान, ओर्लोन, नायलॉन इत्यादि।

लगभग सभी प्रकार के कृत्रिम रेशों के बहुलक पदार्थ को पिघलाकर अथवा उन्हें किसी उचित द्रव्य में घोलकर प्राप्त किया जाता है। प्राकृतिक रेशों के बनने की क्रिया का अध्ययन कर, कृत्रिम रेशों को बनाने के लिए कई प्रकार के स्पिनरेट विकसित किए गये। कई प्रकार के स्पिनरेट ऐसे कुछ स्पिनरेट बहुलक पदार्थ तथा बनने वाले धागे चित्र-6 में दिखाए गये हैं। एक स्पिनरेट में लगभग 50 से 60 ऐसे बारीक छेद कर रेशों की मोटाई बदली जा सकती हैं, जोकि प्राकृतिक रेशों में संभव नहीं था। आज विभिन्न मीलों लंबे कृत्रिम रेशे विभिन्न गुणधर्म के बनाये जाते हैं। इन धागों का उपयोग कपड़ा बुननें, गलीचे बनाने इत्यादि में हो रहा हैं।

तालिका 2: कुछ वनस्पतिक रेशों में विभिन्न घटकों का अनुपात

रेशे का प्रकार	सेल्युलाज (%)	पानी (%)	राख (%)	लिगनीन तथा पेक्टीन (%)	अन्य (%)
पेड़ के तने से प्राप्त होने वाले रेशों में					
कांगो जूट	75.5	7.7	1.8	13.5	1.4
फ्लेक्स अथवा लिनन	76.0	9.0	1.0	10.5	3.4
हेम्प	77.0	8.9	0.8	9.3	4.0
रामी (चीनी घांस)	91.0	4.0	0.4	5.0	0.2
पेड़ के पत्तों से प्राप्त होने वाले रेशों में					
बांस	77.5	6.2	1.0	13.5	1.2
हेनाक्वीन	76.2	4.5	1.2	13.1	3.5
मनिला हेम्प	63.0	12.2	1.0	21.1	1.5
आइसल	73.0	5.7	1.8	17.4	2.1
पेड़ के बीजों प्राप्त होने वाले रेशों में					
कपास	90.0	8.0	1.0	0.4	0.7

फूट नोट - डेन रेशे की महीनता नापने का एक इकाई है। किसी रेशे की 9000 मीटर (9 किमी.) लंबाई का ग्राम इकाई में जितना वजन आता है उसे डेन कहा जाता है। कम डेन का रेशा अधिक महीन होगा।

डॉ.होमी भाभा हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता 2009 (इतर हिंदीभाषी) में प्रोत्साहन पुरस्कार प्राप्त

सर्वरोगहारक एवं सौंदर्य वर्धक ग्वारपाठा

- डॉ.सुधाकर कोकाटे -

भूतपूर्व वैज्ञानिक, भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र, मुंबई - 400 085

कुमारी भेदनी शीता तिक्ता नेत्र्या रसायनी।
मधुरा बृहणी बल्या वृष्या वात विष प्रणुत् ।।
गुल्म प्लीह्यकृद वृद्धि कफज्वरहरी हरेत ।
ग्रन्थ्याग्निदग्ध विस्फोट पित्तरक्त्वगामयान् ।।

ऋषि मुनियों ने प्राचीन ग्रंथ में एक प्राकृतिक अनमोल कल्पवृक्ष का वर्णन किया है। यह स्निग्ध, शीतल, तिक्त, मधुर, रस युक्त, पौष्टिक बलवर्धक, सौंदर्य रक्षक है। इसके प्रयोग से कफ, ज्वर, दमा, पीलिया, मधुमेह, रक्तविकार, पेट के रोग, त्वचा दोष, गुर्दे के रोग दूर होते हैं। इस बहुगुणी अनमोल औषधि वनस्पति का नाम है - ग्वारपाठा (Aloe Vera)

यह मरुदभिदी पौधों की लगभग 180 जातियों का वंश है जिसका मूलस्थान पूर्वी और दक्षिणी अफ्रीका, ग्रीस, इटली, सायप्रस, माल्टा, केपकनारी द्वीपसमूह है। भारत में इसकी कई जातियां वृक्ष व बूटियां के रूप में उपलब्ध है। आयुर्वेद के ग्रंथ चरक संहिता, सुश्रुत संहिता वागभट्ट संहिता, अथर्ववेद आदि में ग्वारपाठा का उल्लेख मिलता है। इसके गुणों का वर्णन अमरकोश (ई.400), राजनिघण्टु (ई1200), सारंगधर संहिता, भावप्रकाश के साथ यूनानी ग्रंथों में भी मिलता हैं। विश्व की अनेक प्राचीन देशज चिकित्सा पद्धतियों की औषधियों में इसका प्रयोग होता है। एलेक्झेंडर दि ग्रेट (ई.300 बी.सी.) के द्वारा अपने घायल सैनिकों के घावों के उपचार के लिए 'ग्वारपाठा' का उपयोग किया गया। मिश्र देश की रानियाँ तथा इंग्लैंड की रानी एलिझाबेथ शृंगार प्रसाधन हेतु इसका उपयोग करती थी। लिलिएसी कुल का यह पौधा हर आयु और रोग के लिए गुणकारी है। यह शरीर में पहुंचकर विकृत कोशिकाओं को हटाकर नई कोशिकाएं निर्माण करती हैं तथा कोशिकाओं को सशक्त एवं प्रभावी बनाती है। त्वचा में गहराई तक असर करती है और शरीर के अंदर जमा विष को बाहर निकालने में सहायक है। असंक्राम्य विधि (Immune system) से शरीर में रोगाणुओं से लड़ने की शक्ति निर्माण होती है। ग्वारपाठा के पौधे, पत्ते, जेल, जड़ सभी औषधीय गुणों से संपन्न हैं। महात्मा गांधीजी ने कहा था 'मेरे लंबे उपवासों में भी मेरी शक्ति का रहस्य - मेरा सरल जीवन व ग्वारपाठा का नियमित प्रयोग जो मैंने 19वीं शताब्दी के अंत में दक्षिण अफ्रीका में जाना।'

'ग्वारपाठा' शब्द की उत्पत्ति अरबी शब्द 'ऐलोह' से हुई है। जिसका अर्थ है चमकीला कसैला पदार्थ। ऐतिहासिक परिप्रेक्ष में यदि दृष्टि डालें तो इसका इतिहास वर्तमान से 5000 वर्ष प्राचीन है। ग्रीस, रोम, भारत व चीन में इसका प्रयोग विपुल रूप में किया गया है। इसे मेडिकल प्लान्ट, के नाम से भी जाना जाता है। देश के विभिन्न भाषाओं में इसका पर्यायी नाम तालिका 1 में दिया गया है।

ग्वारपाठा के क्षुप बहुवर्षायु 3-4 फुट ऊंचे होते हैं। इसकी जड़ के ऊपर तने से पत्ते निकलते हैं। ये पत्ते बहुत मोटे, दलदार लगभग 37.5 सें.मी.लंबे, 10 सें.मी. चौड़े एवं 1.9 सें.मी.मोटे होते हैं। इसके फूल पीले नारंगी रंग के होते है। भारतवर्ष में मध्यप्रदेश, सौराष्ट्र, उत्तर प्रदेश तथा राजस्थान में इसकी पैदावार ज्यादा हैं। बालू/रेतीमय पानी इकट्ठा न करनेवाली जमीन, इसके लिए बेहद उपयुक्त हैं। 10-15 टन कांपोस्ट/हेक्टर जमीन के लिए जरुरी है। उत्पादन की दृष्टि

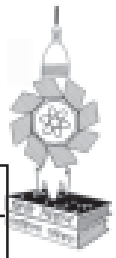

तालिका 1

विभिन्न भाषाओं मे ग्वारपाठा के पर्याय

संस्कृतः कुमारी, तरूणी, माता, अमरा, बहुपत्ती, घृतकुमारी, कन्या, कन्यका, अफला, भृंगेष्ठा, दीर्घपत्रिका, गृहकन्या, मण्डला रमा, विपुलसवा, मृदु, स्थूलदला, सुरसा, ताराणी, स्थलेरूहा, सुकंटका, कपिला, कंठकानी, सुवाहा, विरा, अदला

हिंदीः ग्वारपाठा, घीकुमारी, कुँवरफटा, घीगुवारा ढेकवार, कुमारी

मराठीः कोरफड, कोरकाण्डा, कोरफंटा, कुंवरफटा

गुजरातीः कुवार, कडवीकुंवर

कन्नड़ः कट्टाली, लोली, लोलीसारा, सिमेकट्टाली

बंगलाः घृतकुमारी

तमिलः काट्टोली, कत्तालै, कोडीयान, वेलीगाम्

तेलगुः चिन्नकत्तबण्डा, चिनारकासिमता, मंजिकट्टाली

मलयालमः कट्टाला, चेरूकट्टाला, घुतकुमारी

उड़ीयाः कुमारी, धिरूतोकुमारी

पंजाबीः कुवारगंदल

कोकणीः कोलीसर, कुमारी

चीनीः लु हुइ

पारसीः दरस्व्लेसीन्न

तालिका 2

ग्वारपाठा खेती

जमीनः बालूमय

जलवायुः शुष्क, उष्ण, नम, गीला

दूरीः 60-75 से.मी.

खादः कांपोस्ट 15 टन/हे.

ग्वारपाठा के गुण

- शक्तिवर्धक, सौन्दर्यवर्धक
- उत्तम एन्टिबायोटिक
- रोगनाशक
- त्वचा में गहराई तक असरकारक
- नये कोशों का निर्माण एवं मृत कोशों को हटाना
- पोषक एवं विषनाशक
- ग्वारपाठा के लड्डू, हलवा, सब्जी एवं अचार गुणकारी

तालिका 3 - रासायनिक विश्लेषण

पौधा	ऐलोइसिन, बार्बालॉइन, आयसोबार्बालॉइन बीटा बार्बालाइन, इमोडिन, क्रिस्सोफॅनिक अम्ल, कुमारीन्स, बीटा सीटोस्टीरॉइल, ल्यूपिएल, ॲन्टीबायोटिक, फ्री ॲमिनो अम्ल
पत्ता	ऐलोनीसाइड, रेझिन्स, युरॉनिक अम्ल ऑक्सिडेज, कॅटालेझ, शर्कश, ग्लायकोसाइडस, बार्बालॉइन, जल, राख
रस	ॲथ्राक्विनानीस्, ग्लिसिरॉइडस, रेझिन्स
जेल	स्टिरॉइडस, ऑरगनिक अम्ल, ॲमिनो अम्ल, सॅपोनिन्स, खनिज पदार्थ

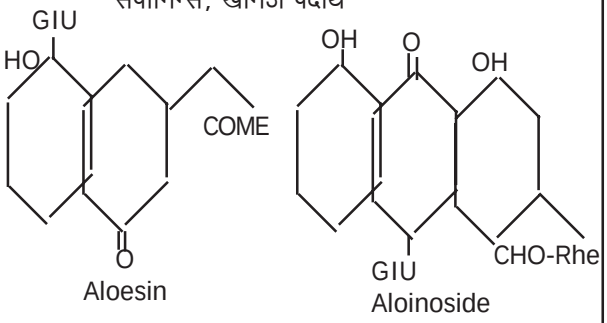

8 सी ग्लायकोसिल नोरेनजीन
0 ग्लायकोसिल आयसोनॅलोरेजिन डी-1
4''-0-ग्लायकोसिल (2''-0 सिनामॉइल) 7-0
मिथॉलोडाइल - ए
आर्चिडॉनीक अम्ल
8-0 - मिथेल - 7- हायड्रोक्सि अलॉइन-ए
ग्लायकोझायलेज I व II
प्लास्टिडस, प्रोलिन्स, पॉलिअमाइन्स

से आय सी 111267- 68-72-77 जातियों के ग्वारपाठा ज्यादा उपयुक्त होते हैं। लगभग 60 टन ग्वारपाठा के पत्ते हर हेक्टर क्षेत्र से प्राप्त होते हैं। (तालिका 2)

ग्वारपाठा में रासायनों का प्रचुर का भंडार है। इसमें 20 अमीनो अम्ल, 170 से ज्यादा द्वितीयक मेटाबोलाइट विद्यमान होते हैं। इनमें श्लोइन, बरबेलाइन, एलोईमोडिन, ग्लाइकोसाईड, एलाइरोसिनी, ए.बी.सी. इलोइसेन तथा होमोनेटोलीन रहते हैं। विटामिन ए, बी , बी-5, बी-6, बी - 12 सी एवं ई, एन्जाइम्स, खनिज पदार्थ, शर्करा, कार्बोन, लिग्राइन सपोनिन वसीय, अम्ल, सेलिसिलीका अम्ल आदि रहते हैं। नवीनतम खोज से कई नये रासायनों का गवेषणा वैज्ञानिकों ने किया है (तालिका 3) ग्वारपाठा में पोषक तत्वों का समूह रहता है (तालिका 4)। इसी कारण ग्वारपाठा एक प्राकृतिक उच्चमतम गुणकारी औषधि वनस्पति हैं। इसमें कई औषधीय गुण होते हैं। (चित्र 1). आयुर्वेदमतानुसार एंटीबायोटीक, एंटीमाइक्रोबियल, फफूंदनाशी गुणों के कारण यह रोगाणुओं को मौत के घाट उतारने में सक्षम है। इसके सेवन से कई सूक्ष्म जंतु - जीवाणुओं का नाश हो जाता है (तालिका -5,6)।

'ग्वारपाठा' के जेल, स्वरस एवं दवाओं से हृदय रोग, मधुमेह, मोटापा, दमा, रक्तचाप, पाचन रोग, सूजन, दाह, त्वचा विकार, जोड़ों का दर्द, दंतरोग, घाव कमजोरी, नेत्ररोग और अन्य रोगों से छुटकारा पाया जा सकता है। (तालिका 7)। अमेरिकन, एनिमल स्टडी सेंटर में पशुओं के घावों पर ग्वारपाठा लगाने से एवं पिलाने से 6 दिनों में जख्म भर गए। कॅलीफोर्निया के डर्मिटोलॉजिस्ट जेम्स प्लूटोन के अनुसार इसके गूदे के प्रयोग से 80 मरिजों के त्वचा रोग दूर हो गए। थाइलैंड की बर्न यूनिट में 27 मरिजों के जलने के घाव 14 दिनों में ग्वारपाठा के लेपन से भर गए। जापान के होशी विश्वविद्यालय में ही ग्वारपाठा का विभिन्न रोगियों पर किये गये अनुप्रयोग से यह प्रमाणित हुआ है कि ग्वारपाठा के समुचित उपयोग से रोगियों को लाभ मिला तथा उनमें रोगप्रतिरोधक शक्ति बढ़ी। 5 फीसदी ग्वारपाठा व खनिज तेल से सोराइसिस ठीक हुआ । ग्वारपाठा का रस दिन में 3 बार 7 दिनों तक लेने से 2 सप्ताह में आंत्तग्रस्त शोथ संक्रमण खतम हुआ। रोजाना आधा चम्मच ग्वारपाठा 14 सप्ताह तक लेने से मधुमेह रोगियों को राहत मिली. उनकी शर्करा में काफी कमी आ गई। रोजाना 4 चम्मच ग्वारपाठा का रस 3 सप्ताह लेने से आमवात रोग दूर हुआ। जापान देश में फेफड़ों के कैन्सर से पीडित 673 रोगियों पर, साबित हुआ ग्वारपाठे का रस गुणकारी रहा। मेडिकल हेल्थ एसोसिएशन इन पब्लिक सेक्टर द्वारा यह प्रमाणित किया जा चुका है कि प्रतिदिन 2 सप्ताह तक 30 मि.ली. ग्वारपाठा का रस पीने से प्रमेह रोग ठीक हो जाता है। अंतर्राष्ट्रीय एड्स अनुसंधान केंद्र में ग्वारपाठे के रस से एड्स रोगियों की स्थिति में काफी सुधार आया। ग्वारपाठा के महत्वपूर्ण गुण से आज चिकित्सा के क्षेत्र में क्रांति आ गई है। अनेक योग/कल्पों का निर्माण हुआ है। (तालिका-8) सामान्यतः एलोपथी चिकित्सा में कुछ न कुछ दुष्प्रभाव सन्निहित होते हैं,जबकि ग्वारपाठा के उपयोग से किसी प्रकार का दुष्प्रभाव नहीं होता है। ग्वारपाठा से निर्मित लड्डू, हलवा, सब्जी एवं आचार औषधीय गुणों से युक्त जिसके सेवन व शरीर का मानसिक स्वास्थ्य भी अच्छा होता है। रोगाणुओं को शरीर के नजदीक भटकने भी नहीं देता। यह रोगाणु रक्षण शक्ति चैतन्यता को बढ़ाता है। त्वचा की झुर्रियां मिटाकर बूढ़ा जवान दिखता है। इसके नियमित प्रयोग से त्वचा नरम व चमकीली हो जाती है। आयुर्वेदानुसार ग्वारपाठा के रस को स्वर्ण भस्म, रजत भस्म, ताम्र भस्म, प्रबल भस्म, लौह भस्म, मण्डूर भस्म आदि के साथ मिलाकर इसके औषधीय गुणों में वृद्धि की जाती है। कई असाध्य रोगों का नाश इसकी हरी पत्तियों के रस/जेल से हो जाता हैं।

आज पूरे विश्व में ग्वारपाठा संबंधी अनुसंधान काफी मात्रा में हो रहा है। ग्वारपाठा की खेती में सुधार, जैव तकनीकी, रसायनों का परिणाम, जैविक गुण, रोग निवारक शक्ति, प्रौद्योगिकी पदार्थ, औषधियों का निर्माण आदि क्षेत्रों में शोध कार्य सारे विश्व में शुरु हैं। प्रौद्योगिकी पदार्थ उत्पाद एवं रोग निवारण के क्षेत्र में विशेष अनुसंधान कार्य जारी है। (तालिका 9) प्राचीन काल से लेकर आज तक इस विषय से संबंधी गेण्वेषण निरंतर बढ़ रहा है। इसका प्रमाण ग्राफ (तालिका 10) में निहित है। अनेक वैज्ञानिक इसमें कार्यरत हैं। डॉ. बर्नस ने 1916 में अलोय के विभिन्न जातियों का अध्ययन किया। डॉ चोपड़ा एवं डॉ घोष ने उसके उपयोगों पर काफी प्रकाश डाला। ग्वारपाठा खेती सुधार संबंधी अनुसंधान कार्य डॉ इव्हर्ट एच, एक्सबाकर ने किया। 1987 में डॉ महमूद एवं अन्य साथियों ने ग्वारपाठा के जीवाणुरोधी गुण पर शोध कार्य किया। उन्होंने इसके परिणाम इजिप्रिशियन जर्नल ऑफ मायक्रोबायोलॉजी 21(2)229-238 में प्रकाशित किए। डॉ डेवीस ने अमेरिका रिसर्च सेंटर में ग्वारपाठा के घाव भरने

तालिका 4

ग्वारपाठा के पोषक तत्व

पोषक तत्व	प्रमाण मिलीग्राम /औंस में	पोषक तत्व	प्रमाण मिलीग्राम /औंस में
एमीनो अम्ल	7.10	फेनिलेलेनीन	0.41
पोटेशियम	17.57	प्रोलीन	0.50
कैल्शियम	14.32	मेथिओनीन	0.41
सोडियम	5.21	आर्जिनीन	0.41
मैग्नीशियम	2.72	ग्लाइसिन	0.41
ग्लूटामिक अम्ल	1.04	वैलीन	0.41
ल्यूसीन	1.01	आइसोल्यूसीन	0.41
फॉस्फोरस	0.90	हिस्टिडाइन	0.41
एस्पारटिक अम्ल	0.80	प्रोटीन्स	0.10
ट्रिप्टोफैन	0.81	मैंगनीज	0.10
थ्रिओनीन	0.81	आयरन	0.05
एलेनीन	0.65	कॉपर	0.01
सेरीन	0.59	टाइरोसिन	0.41

के गुण को परखा। ग्वारपाठा के हरे रसीले तीक्त पत्ते अल्सर पर कैसे गुणकारी हैं इसका परीक्षण डॉ परमार एन.एस.ने किया. (संदर्भ : फिटोटर्पिया 57(5) 380-383), डॉ मोसा जे.एस. ने ग्वारपाठा मधुमेह रोग का कैसे मुकाबला करता है इसका अध्ययन किया। (तालिका 10)। 1982-2009 तक

सभी शोधपत्रों का अध्ययन किया जाए तो ज्यादातर में ग्वारपाठा के रोगनिवारक शक्ति एवं औषधि गुणों के बारे में तथ्य पूर्ण जानकारी दी गई है।1935 में शोध के परिणामों से यह ज्ञात हुआ कि ग्वारपाठा विकिरण से होनेवाली जलन में काफी उपयोगी है। इस क्षेत्र में विभिन्न दृष्टिकोण से अनुसंधान कार्य किया जा रहा है।

आज अपने देश में एवं अमेरिका जैसे प्रगत देश में बाजारों में बिकनेवाली 90 फीसदी सौंदर्य सामग्रियों में ग्वारपाठा का प्रयोग हो रहा है। नई, प्रभावी रोग निवारक औषधियों में इसका प्रभाव उत्साह वर्धक है। सभी देशों में ग्वारपाठा का निर्यात - आयात हो रहा है। अमेरिकी बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने विभिन्न उत्पादों पर, प्रोसेसिंग तकनीकी पेंटेट हासिल की हैं। इतनी सस्ती, विपुल गुणकारी, रोग निवारक प्राकृतिक औषधि ग्वारपाठा के सिवा दूसरी अन्य नहीं है। उसका अध्ययन, अनुसंधान एवं उपयोग मानव के लिए अत्यंत कल्याणकारी हैं. वास्तव में ग्वारपाठा मानव समाज के लिए निसर्ग द्वारा प्रदत्त एक अनमोल वनस्पति है।

तालिका - 5

ग्वारपाठा जेल से सूक्ष्म जीवाणुओं का नियंत्रण

स्ट्रेप्टोकॉकस पायोजिन्स

स्ट्रिओबॅक्टर प्रजाति

सेरेटेओया मॅक्रेसिन्स

इंटेरीयो बैक्टर ॲरियोजीन्स

बैसिलीस सबटिलीस

क्लेबिसीयला न्यूमोनिया

स्टेफेलेओकॉकस ऑरीएस

इशिरिचीया कोली

कॅनडीडा ॲलबिकॅन

समायोबैक्टिरीयम ट्यूबर क्यूलासिस

कोरिनी बैक्टिरीयन झेरॉसी

सालमोनेला पैराटायफी

डिमोनस ऑरीयोजिनोसा

प्रोटीएस वल्गारिस

स्ट्रेप्टोकॉक्स फैसिलीस

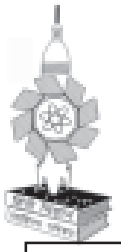

तालिका 6

ग्वारपाठा के चिकित्सीय गुण

सूजनरोधी	गर्भाशय बल्य
प्रतिजीवाणु	रजः प्रवर्तक
फफूंदनाशी	रसायन
ज्वरनाशक	एंटीबायोटिक
पीडाहर	एंटीमाइक्रोबियल
जलन कम करनेवाला	सेटिटॉक्सिक
बलवर्धक	एंटीएलर्जिक
कामोद्दीपक	एंटी यीस्ट
घाव भरनेवाला	मोटापारोधी
खून शुद्ध करनेवाला	दुर्गंधहर
झुर्रीनाशक	संक्रामक दोष हर
बाल बढ़ानेवाला	रेचक
कृमिघ्न	शरीर शुद्धी कारक
मूत्र गंदगी हटानेवाला	सौंदर्यवर्धी
शुक्रजनन	पूयनाशी

तालिका 7 :

रोग निवारक ग्वारपाठा

रक्तविकार	प्रमेह	विवर प्रदाह
हृदयरोग	ज्वर	पसीने की बदबू
मधुमेह	खांसी	कैंसर रोग
वातव्याधि	जुकाम	आंव
मोटापा	बालरोग	उल्टी
नेत्रविकार	मलावरोध	आमवात
बवासीर	रक्तक्षीणता	संधिशोथ
यकृतवृद्धि	भूख न लगना	आंतों के रोग
मासिक धर्म	कृमि	सोरायसिस
मुंहासे	कुष्ठरोग	झुर्रियां
अस्थमा	अलसर	दाद, घाव
मूत्रविकार	सीरदर्द	चोट
सिरदर्द	जलोदर	कमजोरी
चर्मरोग	दांतो के रोग	बेहोशी
रक्तदाब	फोडा	अफारा
एसिडीटी	पित्ती	अपस्मार

	तालिका 8 : **ग्वारपाठा के कल्प/योग**	**वयस्क**	**बच्चे**
कुमारी आसव नं.1	- पेट रोग, अस्थमा, खांसी, मोटापा, मधुमेह, मूत्रविकार, ज्वर, ॲनिमीया, वातव्याधि, ॲसिडीटी, प्रमेह, जुकाम	- 30	- 15
कुमारी आसव नं.2	- पेट विकार, अजीर्ण, भूख न लगना, यकृत वृद्धि	- 20	-10
कुमारी आसव नं.3	- खांसी, श्वसन विकार, पेट रोग, भूख न लगना, प्रमेह अजीर्ण	- 1	-5 बूंदे
कुमारी आसव नं.4	- पेटरोग, भूख न लगना खांसी, यकृत वृद्धि, प्रमेह, बालरोग	- 25	- 10
रजः प्रर्वर्तिनी वटी	- प्रमेह, पीठ का दर्द, मासिक धर्म व्याधि	- 1 से 2 गोली, 2-3 बार	
चतुर्भुज रस	- ज्वर, खांसी, भूख न लगना, श्वसन विकार, शरीर की सुंदरता	- 1 गोली, 2-3 बार	
चतुर्भुख रस	- हिस्टिरिया, खांसी, टी.बी.ॲनिमिया, वातव्याधि	- 1-2 गोली, 2 बार	
प्रदरान्तक रस	- प्रमेह, मासिक धर्म व्याधि ज्वर, मधुमेह, गर्भाशय विकार	- 1-2 गोली, 2-3 बार	
पूर्णचंद्ररस	- श्वसन, खांसी, भूख न लगना, अजीर्ण, पीलिया, मधुमेह, हृदयरोग, अरुचि	- 1-2 गोली, 2-3 बार	
वंगेश्वर रस	- प्रमेह, मधुमेह, खांसी, चर्मरोग, पीलिया, भूख न लगना, मूत्रविकार, श्वसन विकार, अरुचि	-1-1 गोली सुबह, शाम मधु के साथ	
बृहतवातचिंतामणी रस	- हृदय व चेता रोग, वातव्याधि खांसी, अर्धांगवायु, मनोविकार	-1-1 गोली, सुबह शाम	
कुमार्यादिलेप	- नेत्र रोग	- आंखो पर लेप	

तालिका **9**

कार्यों का रेखांकन ग्वारपाठा संबंधी अनुसंधान

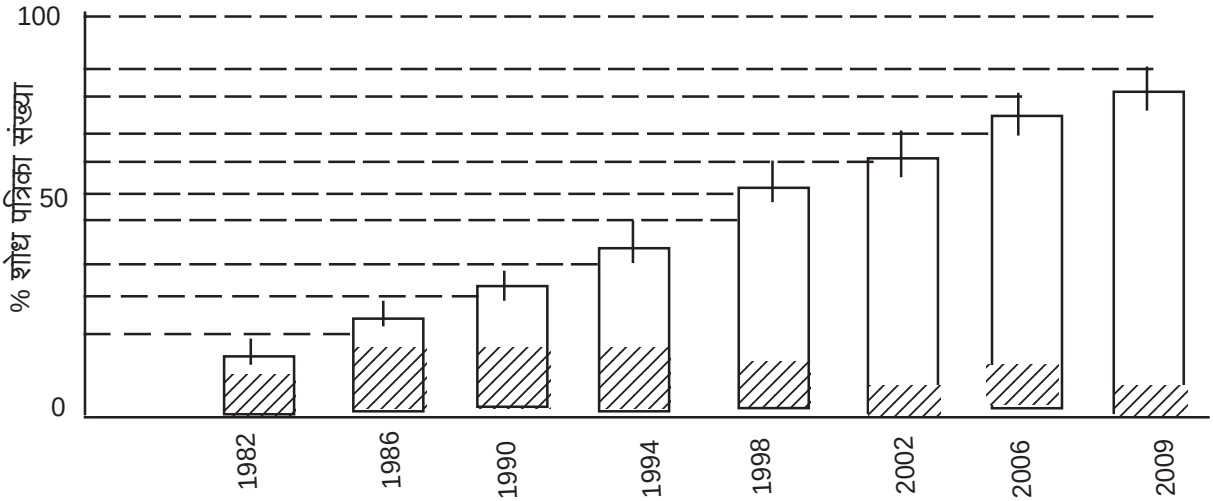

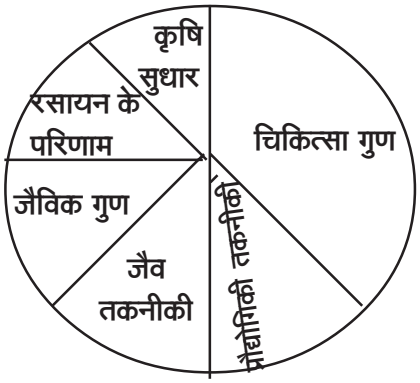

टिप्पणी

1- घातक है फास्ट फूड का बढ़ता चलन

आधुनिक विकास के नाम पर नित्य नए किस्म के फास्ट फूड एवं डिब्बाबंद खाद्य पदार्थों का प्रचलन तेजी से बढ़ रहा है. आजकल छोटे आयोजनों यानि जन्मदिन से लेकर शादी-विवाह की बड़ी पार्टियों तक इसे एक प्रमुख व्यंजन के रूप में परोसा जाने लगा है। इसकी तरफ लोगों की बढ़ती रूचि के कारण ही आज शहरों में ही नहीं बल्कि ग्रामीण क्षेत्रों में भी हर मोहल्ले, नुक्कड़ और मार्केटों में फास्ट फूड की दुकानें तेजी से पनप रही हैं। विज्ञापनों के द्वारा तो इसे और भी मनमोहक रूप से प्रस्तुत किया जाता है। क्या बच्चे और क्या बूढ़े सभी इसे बड़े चाव से खाते हैं। फास्ट फूड का सेवन करने वाले सभी वर्ग और उम्र के लोग होते हैं लेकिन युवाओं और बच्चों में इसका प्रचलन कुछ अधिक ही बढ़ रहा है। आजकल के बहुत से बच्चे घर का खाना खाने के बजाय फास्ट फूड खाना ज्यादा पसंद करते हैं क्योंकि उन्हें लगता है कि इससे उनका रूतबा बढ़ता है। आज हम पश्चिमी संस्कृति को अपनाने में गर्व महसूस करते हैं। जो इस संस्कृति से प्रभावित हैं या जिन्होंने इस संस्कृति को अपना लिया है उन्हें समाज में आदर की दृष्टि से देखा जाता है तथा 'मार्डन' कहा जाता है।

स्कूल जाते बच्चे टिफिन में भी मैगी या चाउमिन वगैरह ले जाना अधिक पसंद करते हैं। जो बच्चे पराठा रोटी या पूड़ी वगैरह लेकर आते हैं उनका मजाक उड़ाया जाता है जिससे बच्चों में हीन भावना आ जाती है। एक जमाना था जब बच्चों को दही, दूध, मक्खन, गुड़ से बने पदार्थ, हरी साग-सब्जी इत्यादि खिलाया जाता था ताकि बच्चों का संतुलित विकास हो सके। आज यह जमाना है कि अगर बच्चों को यह सब नियमित रूप से खाने के लिए दिया जाता है तो वे समझते हैं कि मेरे मम्मी पापा के पास इतनी क्षमता नहीं है कि फास्ट फूड खिला सकें।

फास्ट फूड में संरक्षण एवं क्वालिटी यानी गुणवत्ता के नाम पर मूल अनाज के चोकर व रेशे को निकाल दिया जाता है और फिर इसमें तरह-तरह के खाद्य पदार्थ मिलाए जाते हैं। कुछ कृत्रिम रंग एवं कृत्रिम खुशबू भी फास्ट फूड को आकर्षक बनाने के लिए मिलाए जाते हैं जो स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होते हैं। आजकल चाईनीज और फास्ट फूड का चलन काफी बढ़ा हुआ है खासकर चाउमिन का। परंतु बड़े चाव से इन चीजों को खाने वाले लोग यह नहीं जानते हैं कि चाउमिन पेट में अन्य चीजों को पचने नहीं देता है तथा यह दिल के ऊपर एक परत बना देता है जिसे एजीनोमोटो कहते हैं। जिसमें दिल से जुड़ी हुई बीमारियों के होने की आशंका काफी बढ़ जाती है।

फास्ट फूड में सांस को सुरक्षित रखने के लिए सोडियम नाइट्रेट का उपयोग किया जाता है। ऐसे ही मिटास लाने के लिए इसमें सैंकरीन का प्रयोग होता हैं। ये तत्व स्वास्थ्य के लिए काफी हानिकारक होते है। फास्ट फूड में 'मोनोसोडियम' ग्लूटामेट नामक तत्व का उपयोग इसे लंबे समय तक ताजा और स्वादिष्ट बनाए रखने के लिए किया जाता है। इसका रंग ऐसा होता है कि खाद्य पदार्थों में इसे मिलाने पर भी इसका पता नहीं चलता और इसकी वजह से प्रतिदिन फास्ट फूड खाने वाले की सेहत पर यह प्रतिकूल प्रभाव डालता रहता है। फलस्वरूप व्यक्ति के कई आंतरिक अंग भी इसकी वजह से प्रभावित होने लगते हैं।

फास्ट फूड में विटामिन सी. विटामिन ए. कैल्शियम तथा लौह तत्वों की कमी होती है। इस कारण लंबे समय तक इस आहार का

अब आवश्यकता है कि लोगों को इस बात को समझने की वाकई हमारे शरीर के लिए किन तत्वों की आवश्यकता है और ये हमें किन स्रोतों से प्राप्त होंगे. कभी आपने सोचा है कि यह फास्ट फूड हमारे शरीर के लिए कितने आवश्यक पोषक तत्वों की जरूरतों को पूरा करता है। हम जीभ के स्वाद के चक्कर में यह भूल जाते हैं कि कौन से पदार्थ हमें खाने चाहिए और कौन से नहीं। स्वाद बदलने के लिए कभी-कभार खा लेना अलग बात है किंतु यह फास्ट फूड आज की पीढ़ी पर पूर्ण रूप से हावी होती जा रही है। अनेक प्रकार की बढ़ती बीमारियां भी सेवन करते रहने से शरीर में अनेक तरह के रोग पैदा हो सकते हैं। आंखों की ज्योति बरकरार रखने के लिए विटामिन 'ए', हडियों की मजबूती के लिए कैल्शियम तथा रक्त की मात्रा बढ़ाने के लिए लौह तत्वों की शरीर को बेहद जरूरत होती है जो फास्ट फूड में प्रायः नहीं होते। विटामिन सी भी फास्ट फूड में नहीं के बराबर होता है जिसकी कमी से 'स्कर्वी' नामक रोग हो सकता है।

विशेषज्ञों के अनुसार अपने पारंपारिक भोजन को छोड़कर फास्ट फूड या डिब्बाबंद भोजन का लगातार सेवन स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हो सकता है। फास्ट फूड में शरीर के लिए आवश्यक रेशे तत्व मौजूद नहीं होते हैं। फलस्वरूप आंत की बिमारी होने की संभावना काफी बढ़ जाती है। फास्ट फूड के लगातार सेवन से बच्चों का उचित शारीरिक विकास नहीं हो पाता क्योंकि उनको उम्र के मुताबिक प्रचुर मात्रा में आवश्यक कैलोरी एवं पौष्टिक तत्व नहीं मिल पाते। फास्ट फूड में मसालों की अधिकता और अजीनोमोटो के प्रयोग से कैंसर होने की संभावना भी बढ़ जाती है। इसका अधिक सेवन करने से अपच, कब्ज, डायरिया और पेट की तमाम गड़बड़ियां भी हो सकती है।

पश्चिमी संस्कृति हमारे ऊपर इस कदर हावी हो रही है कि हम रसोईघर में दो घंटे बिताना भी मुनासिब नहीं समझते हैं। जहां आदमी को अपनों के पास बैठने के लिए वक्त नहीं है वहां 'कैलोरी सिद्धांत' या 'फूड वैल्यू' का कोई मायने नहीं रह जाता है। लोगों की दिनचर्या बदल गई है। तेज रफ्तार की जिंदगी और ग्लोबलाइजेशन ने पारंपारिक भोजन यानि शुद्ध भोजन को पीछे छोड़ दिया है और उसकी जगह चाउमिन, मैगी, पिज्जा, बर्गर, पेटजि, अेगरोल आदि ने ले ली है।

इन्हीं की देन है। 'इंटरनेशनल फाउंडेशन ऑफ नेचुरल हेल्थ' का कहना है कि अप्राकृतिक आहार का दूसरा रूप फास्टफूड है। प्रकृति ने हमें इतने खाद्य पदार्थ उपलब्ध कराए हैं कि मौसम की आवश्यकतानुसार सभी वस्तुएं सही समय पर प्राप्त हो जाती है। जरूरत है इन्हें वास्तविक रूप से ग्रहण करने की। जान है तो जहान है। यदि शरीर ही स्वस्थ्य नहीं रहेगा तो स्वाद का क्या अर्थ रह जाएगा।

-अनिल कुमार-
क्वार्टर नं.एफ-80, पोस्ट -सिन्दरी,
जिला - धनबाद-828122

2 - जिंक और स्वास्थ्य

जिंक विकास एवं वृद्धि के लिए बहुत ही आवश्यक है। अच्छा स्वास्थ्य बनाए रखने में भी जिंक की उपयोगिता है। जिंक शरीर में विभिन्न उपापचय क्रियाओं के लिए आवश्यक है। यह विभिन्न एन्जाइमों को उत्तेजित कर उपापचय क्रियाओं को संपन्न कराने में सहायक है। विभिन्न शारीरिक क्रियाओं जैसे कोशिका विभाजन तथा डी.एन.ए. एवं प्रोटीन निर्माण के लिए भी आवश्यक है। इनके अतिरिक्त अन्य शारीरिक क्रियाओं जैसे पाचन, प्रजनन, घाव भरने, शारीरिक विकास,वृद्धि रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने, स्वाद, गंध, मधुमेह रोग को नियंत्रित करने में जिंक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। बच्चों के विकास, व्यवहार एवं स्मरण शक्ति के लिए जिंक एक आवश्यक घटक है।

प्रकृति में अपार सम्पदा विद्यमान है। इनका उपयुक्त मात्रा में उपयोग जीवन को सरल व स्वस्थ बनाता है। प्रकृति में विद्यमान पदार्थ जीवन के लिए आवश्यक व अमूल्य है। इसी क्रम में प्रकृति में विद्यमान जिंक भी हमारे स्वस्थ जीवन के लिये निहायत उपयोगी एवं आवश्यक है।

जिंक प्राकृतिक पदार्थ है। यह प्रकृति में बहुतायत में उपस्थित है। जिंक पेड़-पौधों, जीवों, खाने की वस्तुओं, पानी व पृथ्वी में पाई जाती है। जीवों, पेड़-पौधों, माइक्रोआरगेनिज्म के जीवन एवं वृद्धि के लिए जिंक का विशेष महत्व है। मनुष्य के शरीर में होनेवाली विभिन्न उपापचय क्रियाओं के लिए जिंक आवश्यक है। जिससे स्वास्थ्य अच्छा रहता है और शरीर का संपूर्ण विकास होता है।

जिंक हमारे शरीर में खाने और जल के द्वारा पहुंचती है। अतः ऐसा भोजन लेना चाहिए जिसमें जिंक की मात्रा अधिक हो। जिंक के अवशोषण की क्षमता कार्बनिक, अकार्बनिक तथा जटिल यौगिक बनाने वाले पदार्थों की मात्रा पर निर्भर करती है। जितनी अधिक इन पदार्थो की मात्रा होगी जिंक का अवशोषण उतना ही अधिक होगा। फाइबर फाइटेट्स, आयरन, कैल्सियम, फोलिक अम्ल की मात्रा पर जिंक का अवशोषण निर्भर करता है। खाने में रेशे की मात्रा अधिक होना लाभकारी है। अच्छे स्वास्थ्य के लिए जिंक रिजर्वायर की भूमिका उल्लेखनीय है।

वयस्कों में जिंक की मात्रा 2-3 ग्राम होती है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार वयस्क को 15 मि. ग्रा. जिंक का सेवन प्रतिदिन करना चाहिए। जिंक की मात्रा का सेवन करना उम्र और लिंग पर भी निर्भर करता है। खाने वाले वे पदार्थ जिनमें जिंक पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है, वे हैं- अण्डे, चीज, चिकेन, मशरूम, नट, रेडमीट, यकृत, कद्दू के बीज, हरी सब्जियां, अनाज, साइट्रस फल, आलू, तेल-वसा आदि ध्यान रहे अधिकता हानिकारक होती है। अतः समुचित मात्रा में सेवन करना ही हितकर होता है।

जिंक विकास एवं वृद्धि के लिए बहुत ही आवश्यक है। अच्छा स्वास्थ्य बनाए रखने में भी जिंक की उपयोगिता है।

विभिन्न पदार्थों में जिंक की मात्रा निम्न प्रकार है।

पदार्थ	जिंक की मात्रा
यकृत	10.0
कद्दू के बीज	7.4
रेड मीट	5.2
नट	3.0
मशरुम	2.8
चिकन	1.5
अंडा	1.3
चीज	1.2
अनाज	1.0
साइट्रस फल	0.8
तेल, वसा	0.5
हरी सब्जियाँ	.04
आलू	.03

जिंक शरीर में विभिन्न उपापचय क्रियाओं के लिए आवश्यक है। यह विभिन्न एन्जाइमों को उत्तेजित कर उपापचय क्रियाओं को संपन्न कराने में सहायक है। विभिन्न शारीरिक क्रियाओं जैसे कोशिका विभाजन तथा डी.एन.ए. एवं प्रोटीन निर्माण के लिए भी आवश्यक है। इनके अतिरिक्त अन्य शारीरिक क्रियाओं जैसे पाचन, प्रजनन, घाव भरने, शारीरिक विकास,वृद्धि रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने, स्वाद, गंध, मधुमेह रोग को नियंत्रित करने में जिंक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। बच्चों के विकास, व्यवहार एवं स्मरण शक्ति के लिए जिंक एक आवश्यक घटक है।

आयन्स में विभाजित होने वाले जिंक पदार्थ का सेवन करना लाभप्रद होता है। कोशिका झिल्ली को स्थिर करने में जिंक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। जिंक, कोशिका झिल्ली का विषैले पदार्थों से रक्षा करती हैं। जिंक आयन, प्राकृतिक एन्टीऑक्सीडेन्ट हैं। जो विटामिन 'सी' और 'ई' से अधिक प्रभावी है। जिंक आयन, घाव भरने, जले हुए भाग पर नई त्वचा आने में, विषैले पदार्थो के प्रभाव को कम करने में प्रभावी भूमिका निभाते हैं।

जिंक मस्तिष्क के उन भागों का उत्तेजित करती हैं। जहां स्वाद और गंध की सूचना देने वाले सेन्सर होते हैं। जिंक इम्यून कोशिका के लिए विशेष पदार्थ का कार्य करती हैं। जिससे शरीर का इम्यून सिस्टम सुचारू रूप से कार्य करता है और इन्फेक्शन का प्रभाव नहीं हो पाता। बुढ़ापे में इम्यून सिस्टम कार्य नहीं कर पाता। परन्तु जिंक की समुचित मात्रा लेने से बुढ़ापे में इम्यून सिस्टम कार्य करने लगता है।

हम इनफेक्शियस बीमारियों से ग्रस्त नहीं होते। अतः स्वास्थ्य को बनाये रखने में जिंक उपयोगी भूमिका निभाता हैं।

झुर्रियॉ रहित, स्वस्थ्य त्वचा के लिए जिंक आवश्यक है। जिंक यकृत से विटामिन 'ए' का बहाव त्वचा की ओर कर देती है। जिससे त्वचा को पोषक तत्व मिल जाते हैं तथा त्वचा की रक्षा हो जाती है। जिंक आक्साइड एक अच्छा एसट्रिजजेन्ट है। जिंक का उपयोग इचिंग को दूर करने, होठ फटने, सन बर्न, मसूढ़ों की बीमारियों से बचने में भी जिंक की उपस्थिति से त्वचा के ऊतक लचीले हो जाते हैं। जिससे त्वचा में झुर्रियां नहीं पड़ती। त्वचा की सुंदरता बनी रहती है।

जिंक की कमी होने पर विकास-वृद्धि का कम होना,

आलस्य, बालों का गिरना, स्वाद और गंध की पहचान न कर पाना, आंखों की रोशनी कम होना आम बात है। जिंक की कमी होने पर प्रतिरोधक क्षमता, प्रजनन क्षमता में कमी हो जाती है। जिंक की कमी होने पर त्वचा रुखी व झुर्रियों वाली हो जाती है।

जिंक की कमी के कारण शरीर में विभिन्न उपापचय क्रियाएं सम्पन्न नहीं हो पाती जिससे स्वास्थ्य गिर जाता है। बच्चों में जिंक की कमी से डायरिया, डिसेन्ट्री, निमोनिया, मलेरिया रोग होने की संभावना बढ़ जाती है। अनुसंधानों से ज्ञात हुआ है कि जिंक की कमी के कारण मस्तिष्क का विकास अवरुद्ध हो जाता है। जिससे याद करने व याद रखने की क्षमता कम हो जाती है।

जिंक की कमी होने पर उंगलियों के नाखूनों में सफेद चिन्ह बन जाते है। अधिक जिंक की कमी होने पर बेन्ड बन जाते हैं। जिंक की कमी से घाव भरने की प्रक्रिया कम हो जाती है। विकास वृद्धि की गति अवरुद्ध हो जाती है।

विकासशील राष्ट्रों में जिंक की कमी होना आम बात है। विकसित राष्ट्रों में भी जिंक की कमी पाई गई है। विश्व स्वास्थ्य संगठन ने जिंक की कमी को अंतराष्ट्रीय जनस्वास्थ्य समस्या बतलाई है। इस ओर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है।

जिंक की कमी से गर्भावस्था में जटिलताएं उत्पन्न हो जाती है। जिंक की समुचित मात्रा का सेवन करने से प्रसव के समय समस्या उत्पन्न नहीं हो पाती और नवजात बच्चा स्वस्थ्य होता है।

अनाजों में जिंक की मात्रा बढ़ाने के लिए कृषि के तरीको में परिवर्तन का सुझाव दिया जाता है। खाने की वस्तुओं में जिंक की मात्रा बढ़ाने के भी उपाय किए गए हैं। विश्व के कई देशों में गेंहू और मक्के के आटे में जिंक की मात्रा निर्धारित कर, जिंक की कमी को दूर करने के प्रयास किए गए हैं। अमेरिका तथा यूरोप के देशों में भी खाने की वस्तुओं में जिंक की मात्रा निश्चित की है। इस तरह के प्रयास सर्वत्र एवं हर स्तर पर सुनिश्चित करने की महती आवश्यकता है ताकि हम 'सर्वे संतु निरामया' की सूक्ति चरितार्थ कर सके।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि विकास-वृद्धि, बेहतर स्वास्थ्य, लुभावनी त्वचा के लिए जिंक की समुचित मात्रा आवश्यक है। शरीर में विभिन्न क्रियाओं व उपापचय क्रियाओं के संपन्न होने में जिंक की महत्वपूर्ण भूमिका है। जीवन में उल्लास, उत्साह, स्फूर्ति, बनाए रखने के लिए आवश्यक है कि खाने में जिंक की समुचित मात्रा हो। अन्यथा कमी होने पर शरीर रोगी हो जाएगा। रोगी होने पर व्यवहार बदल जाता है। शरीर में कष्ट व जीवन में नीरसता आ जाती है।

- डा.ए.के.चतुर्वेदी -

26, कावेरी एन्कलेव फेज-।। ,स्वर्ण जयंती नगर के पास, रामघाट रोड, प्रतीगढ़ (उ.प्र.)-20200

'वैज्ञानिक' के प्रमुख संपादक सम्मानित

भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र में कांच एवं प्रगत सिरेमिका प्रभाग के अध्यक्ष डॉ.गोविंद प्रसाद कोठियाल को भारतीय नाभिकीय संस्था (इंडियन न्यूक्लियर सोसायटी-आईएनएस) ने दिनांक 17 जनवरी 2011 को वर्ष 2009 के 'विज्ञान संचार पुरस्कार' से सम्मानित किया। यह पुरस्कार उन्हें अंतर्राष्ट्रीय परमाणु ऊर्जा एजेंसी के अध्यक्ष डॉ यूकियो एमानो द्वारा आईएनएस की वार्षिक संगोष्ठी के उद्घाटन समारोह के दौरान विज्ञान संचार के क्षेत्र में उत्कृष्ट योगदान एवं उपलब्धियों के लिए दिया गया।

डॉ. गो.प्र.कोठियाल भा. प. अ. केंद्र के प्रतिष्ठित प्रशिक्षण विद्यालय के 13वें भौतिकी बैच से हैं और उन्होंने विज्ञान अनुसंधान एवं प्रौद्योगिकी, दोनों ही क्षेत्र में उल्लेखनीय योगदान दिया है। उनका कार्य मुख्यतः 'विशेष प्रकार के कांच एवं कांच सिरेमिकी से संबंधित शोधों का है। जिसके अंतर्गत उन्होंने इन पदार्थों से नाभिकीय ऊर्जा प्रतिरक्षा तथा अंतरिक्ष क्षेत्रों में प्रयुक्त होने वाले पदार्थ एवं युक्तियां तैयार की है और लगभग 120 से अधिक शोध पत्र, अंतर्राष्ट्रीय शोध ग्रंथों में प्रकाशित किये हैं।

इसके साथ-साथ डॉ.कोठियाल नाभिकीय तथा अन्य जन सामान्य से संबंधित विषयों की वैज्ञानिक जानकारी/ज्ञान के संचार तथा लोकप्रियकरण की दिशा में स्वयंसेवी भाव से आरंभ से ही लगातार कार्य करते रहे हैं। आप एक प्रभावी विज्ञान संचारक हैं। आपने हिंदी एवं अंग्रेजी भाषाओं के माध्यम से 'वैज्ञानिक साहित्य सृजन करने के उद्देश्य से लगभग 100 विज्ञान संबंधी लोकप्रिय लेख/समीक्षाएं भी कई विज्ञान पत्रिकाओं में प्रकाशित किये हैं तथा कई राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय संगोष्ठियों में तथा आकाशवाणी से वार्ताएं भी प्रस्तुत की हैं.

डॉ कोठियाल 1991 से अब तक हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद, भापअ केंद्र की 'त्रैमासिक पत्रिका' 'वैज्ञानिक' के प्रमुख संपादक के पद पर कार्य कर रहे हैं और 40 से अधिक विचार प्रेरित करनेवाले एवं सामयिक संपादकीय लिखे हैं। आप नाभिकीय इंजीनियरी शब्दकोश तैयार करने के कार्य से जुड़े रहे, कई परमाणु ऊर्जा विभाग के वार्षिक प्रतिवेदनों के हिंदी रूपांतरण का कार्य भी किये। आप 'विज्ञान संचारकों के राष्ट्रीय केंद्र' के आरंभिक सदस्य होने के साथ-साथ इस केंद्र की कार्यकारी समिति के सदस्य भी हैं। समय-समय पर विज्ञान संचार एवं लोकप्रियकरण हेतु आपको कई अन्य पुरस्कार/सम्मान जैसे विज्ञान वाचस्पति, राजभाषा भूषण पुरस्कार, उत्कृष्ट संपादक इत्यादि भी दिये गये हैं।

'वैज्ञानिक परिवार' की ओर से आपको अनेक बधाइयां तथा शुभकामनाएं।

विज्ञान समाचार

भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र से

1. *भा.प.अ. केंद्र द्वारा विकसित भाभाट्रान-II टेलीथेरपी इकाई का वियतनाम के एक अस्पताल में उद्घाटन :*

भा.प.अ. केंद्र द्वारा विकिरण प्रौद्योगिकी के जनहित अनुप्रयोगों हेतु, महत्वपूर्ण अनुसंधान एवं विकास कार्य किये जा रहे हैं। केंद्र द्वारा विकसित की गयी कई अत्याधुनिक तकनीकों का अपने देश के अलावा विदेशों के कई प्रतिष्ठित संस्थानों में भी उपयोग किया जा रहा है। ऐसी ही एक स्वदेशी विकसित टेलीथेरपी मशीन, जिसका नाम भाभाट्रान रखा गया है, को वियतनाम के कैनथो में स्थित एक कैंसर अस्पताल में स्थापित किया गया है। इस टेलीथेरपी इकाई का उद्घाटन 28 अप्रैल 2010 को वियतनाम में भारत के राजदूत माननीय श्री लाल टी. मुआना न किया गया। उदघाटन समारोह में वियतनाम और पड़ोसी देशों के कई प्रतिष्ठित डाक्टर तथा अंतर्राष्टीय परमाणु ऊर्जा एजेंसी के प्रतिनिधिगण मौजूद थे।

'भाभाट्रान' कोबाल्ट -60 गामा विकिरण स्रोत पर आधारित टेलीथेरपी मशीन है जिसका उपयोग विभिन्न प्रकार के कैंसर के निदान में किया जा रहा है। अंतर्राष्ट्रीय परमाणु ऊर्जा एजेंसी (IAEA) के सहयोग से कैंसर चिकित्सा हेतु बनाई गयी कार्ययोजना के समर्थन में प्रधानमंत्री डॉ मनमोहन सिंह ने वर्ष 2006 में हुई IAEA की महासभा में इस टेलीथेरपी मशीन को IAEA को देने का निर्णय लिया था। इसके पश्चात वर्ष 2007 में इस मशीन को कैन थो कैंसर चिकित्सा अस्पताल में स्थापित करने के लिए भारत, वियतनाम और आईएईए के बीच त्रिपक्षीय समझौता हुआ। हालांकि अस्पताल में इस मशीन के लिए आवश्यक परिरक्षित कक्ष (shielded room) की अनुपलब्धता के कारण इस मशीन को भेजने में देरी हुई। अंततः दिसंबर 2009 में इस मशीन का कमीशन किया गया। इसके लिए उच्च क्षमता वाले कोबाल्ट-60 गामा विकिरण स्रोत, विकिरण एवं आइसोटोप प्रौद्योगिकी बोर्ड (ब्रिट) द्वारा प्रदान किये गए तथा इस मशीन का कमीशनन मेसर्स पनासिया चिकित्सा प्रौद्योगिकी प्राइवेट लिमिटेड, बैगलूरू द्वारा किया गया।

कैन थो, मेकोंग डेल्टा में स्थित सबसे बड़ा शहर है, जिसकी कुल जनसंख्या दस लाख से भी अधिक है। यहां इससे पहले कैंसर रोगियों के उपचार हेतु कोई विकिरण चिकित्सा सुविधा उपलब्ध नहीं थी। अतः भाभाट्रान टेलीथेरपी मशीन के कमीशन से वियतनाम सहित पड़ोसी देशों में रह रहे करोड़ों लोग इस चिकित्सा सुविधा से लाभान्वित होंगे। अंतर्राष्ट्रीय परमाणु ऊर्जा एजेंसी के नाभिकीय विज्ञान एवं अनुप्रयोग विभाग के उप महानिदेशक डॉ. वर्नर बुर्कार्ट ने भारत सरकार के इस अनुदान की काफी सराहना की है।

2. *मृदा कार्बनिक कार्बन संसूचन किट (SOCDK):*

मृदा में उपस्थित कार्बनिक कार्बन, मृदा की जैविक सक्रियता और उसकी उपजाऊ शक्ति के निर्धारण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। विश्वभर में यह प्रमाणित हो चुका है कि मृदा में उपस्थित कार्बनिक कार्बन की मात्रा और

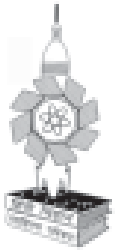

मृदा की उपजाऊ शक्ति में एक सकारात्मक संबंध हैं। सामान्य तौर पर मिट्टी में लगभग 45 % अकार्बनिक घटक, 5 % कार्बनिक घटक, 25 % वायु तथा 25 % जल होता है। भारतीय मृदा पारिस्थितिक तंत्र (soil ecosystem) बहुत ही परिवर्तनशील हैं। क्योंकि यहां उप-उष्णकटिबंधीय जलवायु (sub-tropical climate) होने के कारण मृदा में से कार्बनिक पदार्थो का शीघ्र अपघटन होता है। मृदा में कार्बनिक कार्बन की 1.5-2.0 % तक की मात्रा मिट्टी की संरध्रता को बढ़ाती है। जिससे मिट्टी में सूक्ष्म जीवों को पनपने में सहायता मिलती है। जिसके फलस्वरूप पौधों के लिए आवश्यक विभिन्न पोषक तत्वों की उपलब्धता बढ़ जाती है। अतः कार्बनिक कार्बन मृदा की उपजाऊ शक्ति का सही परिचायक है। साथ ही जिस मिट्टी में कार्बनिक कार्बन की पर्याप्त मात्रा मौजूद होती हैं उसमें अन्य प्रमुख पोषक तत्वों जैसे कि नाइट्रोजन, फास्फोरस की मात्रा भी बहुतायत में होती है।

अभी तक मृदा में उपस्थित कार्बन के नियमित विश्लेषण में कई कठिनाइयां थी। जैसे कि विशेष प्रकार के रसायनों की आवश्यकता, विश्लेषण हेतु उचित व्यवस्था एवं जानकारी की आवश्यकता जो कि कुछ चयनित प्रयोगशालाओं में ही उपलब्ध होती हैं। चूंकि इस प्रकार की प्रयोगशालाओं की संख्या कम हैं अतः किसानों को नियमित रूप से उनके खेतों की मिट्टी में कार्बनिक कार्बन की मात्रा का पता नही चल पाता है। भा.प. अ. केंद्र द्वारा विकसित की गयी मृदा कार्बनिक कार्बन संसूचन किट (SOCDK) एक सटीक एवं शीघ्रता से परिणाम देने वाली वैश्लेषिक किट है, जो स्थलीय परीक्षण के लिए भी उपयुक्त है। इस किट के उपयोग से मृदा के कार्बनिक कार्बन का विश्लेषण बहुत ही सरल है। इसके इस्तेमाल के लिए किसी विशेषज्ञ की आवश्यकता नहीं है, बल्कि किसान स्वयं भी इसका उपयोग कर सकते हैं और 15 से 20 मिनट में अपने खेतों की मिट्टी में उपस्थित कार्बनिक कार्बन का पता लगा सकते हैं।

इस किट में कार्बनिक कार्बन विश्लेषण की सम्पूर्ण सामग्री उपलब्ध होती है। बस किसानो को अपने खेत से मिट्टी के नमूने एकत्रित कर किट में मौजूद परखनली में लगभग एक चम्मच मिट्टी के नमूने को डालना होता है। फिर किट में मौजूद परखनली में लगभग एक चम्मच मिट्टी को लेकर उसमें 10 मिलीलीटर रासायनिक घोल-A और 10 मिलीलीटर रासायनिक घोल-B डालकर अच्छी तरह मिलाएं। इसके बाद 15-20 मिनट के लिए इस घोल को स्थिर होने के लिए छोड़ दें। फिर किट में दिए गए फिल्टर पेपर से इसे छान लें। प्राप्त स्वच्छ निस्यंद (Filtrate) के रंग की तुलना दी गयी रंग तालिका से करके किसान अपने खेत की मिट्टी में उपस्थित कार्बनिक कार्बन की मात्रा ज्ञात कर सकते हैं। इस किट का सबसे बड़ा लाभ यह है कि इसे किसान खुद भी इस्तेमाल कर सकते हैं और तुरंत ही यह जानकारी प्राप्त कर सकते हैं कि उनके खेत को कार्बनिक उर्वरक की आवश्यकता है या नहीं।

3. *डिप एंड ड्रिंक मेम्ब्रेन पाउच का विकास*

प्राकृतिक आपदाओं जैसे कि बाढ़, सुनामी आदि के समय स्वच्छ पेय जल की विकट समस्या उत्पन्न हो जाती हैं। ऐसी स्थिति में शुद्ध पीने योग्य पानी प्राप्त करने के लिए मेम्ब्रेन तकनीक का उपयोग निःसंदेह किसी चमत्कार से कम नहीं है। इस दिशा में भा.प.अ. केंद्र के जल निर्लवणीकरण प्रभाग ने मेम्ब्रेन पाउच बनाने की एक ऐसी प्रौद्योगिकी का विकास किया है जिसके द्वारा संदूषित जल से निजर्मीकृत पीने योग्य जल प्राप्त किया जा सकता है। इस प्रकार के मेम्ब्रेन पाउच में निम्न आण्विक भार, जल में विलेय तथा उच्च परसरणी दाब (osmotic pressure) वाले पदार्थो जैसे कि जीवन रक्षक घोल (ORS), दूध पाउडर अथवा अन्य पीने योग्य घुलनशील पदार्थ मिलाकर प्यास बुझाने के साथ-साथ आवश्यक कैलोरी भी प्राप्त की जा सकती हैं। पाउच की अर्ध-पारगम्य झिल्ली (semi permeable membrane) से परासरण की प्रक्रिया द्वारा केवल पानी ही अंदर प्रवेश कर पाता है और इस प्रकार संदूषणरहित जल प्राप्त होता है।

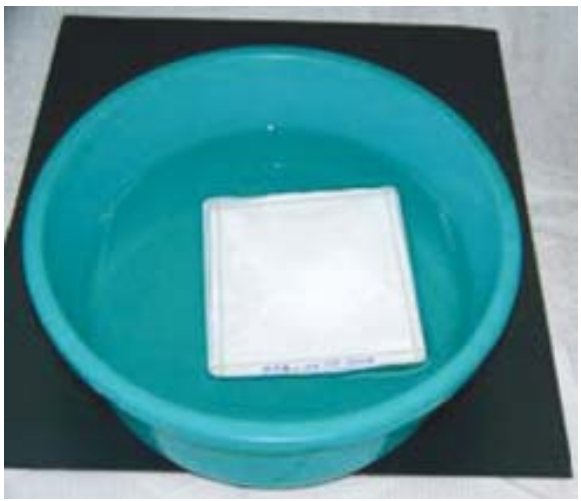

एक 15सेमी X15सेमी आकार के 5 ग्राम ORS युक्त

मेम्ब्रेन पाउच को संदूषित जल में डुबाकर रखने से 3-3.5 घण्टे में 200 मिलीलीटर पेय पदार्थ प्राप्त किया जा सकता है। इस प्रौद्योगिकी का एक अन्य महत्वपूर्ण उपयोग यह भी है कि इसका इस्तेमाल दवा कारखानों तथा रासायनिक उद्योगों से उच्च गुणता तथा निम्न आयतन वाले पदार्थों को सांद्र करने में किया जा सकता है।

4. शुद्ध पेय जल हेतु फ्लोरीन निष्कासन की मेम्ब्रेन आधारित प्रक्रिया :

भारत, विश्व के उन 25 राष्ट्रों में एक है जहां पेय जल में फ्लोराइड की अधिकता के कारण लोग फ्लोरोसिस (फ्लोराइड द्वारा दांतों का क्षय होना) की समस्या से ग्रसित हैं। प्रभावित क्षेत्रों के भूमिगत जल में फ्लोराइड की सांद्रता 1.5PPM से 39PPM तक पायी गयी है जो अनुमेय सीमा (permissible limit)(<1ppm) से कहीं अधिक है। यह पाया गया है कि मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र और बिहार में 30% जिले जबकि उत्तरप्रदेश, राजस्थान, गुजरात, आंध्रप्रदेश और तमिलनाडू में 50% जिले ऐसे है, जहां लोग फ्लोरोसिस की समस्या से प्रभावित हैं। इन क्षेत्रों के भूमिगत अथवा सतह जल में फ्लोराइड की अधिकता का कारण या तो प्राकृतिक निक्षेप (natural deposits) अथवा औद्योगिक प्रदूषण है।

सामान्यतः भूमिगत अथवा सतह जल में से फ्लोराइड के निष्कासन हेतु एल्यूमिनियम युक्त रसायनों का उपयोग किया जाता है जिससे फ्लोराइड, एल्युमिनियम के साथ काम्प्लेक्स बनाकर नीचे बैठ जाता है। परंतु इस प्रक्रिया से उपचारित जल, एल्युमिनियम द्वारा संदूषित हो जाता हैं जो कि फ्लोराइड से भी कहीं अधिक हानिकारक हैं। वस्तुतः मेम्ब्रेन आधारित अवशोषण प्रक्रिया भूमिगत अथवा सतह जल में से फ्लोराइड के निष्कासन हेतु अत्यधिक उपयोगी हैं। क्योंकि इस प्रक्रिया द्वारा न केवल फ्लोराइड से मुक्त शुद्ध पेय जल प्राप्त होता है, बल्कि इससे प्राप्त जल द्वितीयक संदूषणों जैसे कि एल्युमिनियम एवं सूक्ष्मजीवों (microorganisms) से भी मुक्त होता है।

भूमिगत अथवा सतह जल में से फ्लोराइड के निष्कासन की परानिस्यंदन झिल्ली पर आधारित यह प्रौद्योगिकी दो चरणों वाली है। इसके पहले चरण में सक्रिय एल्युमिना अवशोषक (activated alumina sorvent) पर फ्लोराइड का अवशोषण होता है। फिर दूसरे चरण में द्वितीयक संदूषक जैसे कि निक्षालित (leached) एल्युमिनियम का स्वदेशी विकसित मेम्ब्रेन तकनीक द्वारा पृथक्करण होता है। इस प्रौद्योगिकी का एक और लाभ यह भी है कि इसे घरेलू तथा सामुदायिक स्तर दोनों के लिए उपयोग में लाया जा सकता है। साथ ही इसे बिना बिजली के भी प्रचालित किया जा सकता है।

5. उच्च तापमान आक्सीजन संवेदक का विकास :

अद्यतन नाभिकीय ऊर्जा प्रणालियों के लिए, लैड युक्त मिश्रधातुओं को नाभिकीय शीतलक के रूप में अतिउपयोगी माना जाता है। क्योंकि इन पदार्थो द्वारा विशिष्ट ऊष्मीय, भौतिक तथा रासयनिक गुणधर्म प्रदर्शित किये जाते हैं। जैसे कि इन पदाथों का उच्च क्वथनांक, उच्च ऊष्मा चालकता, निम्न वाष्प दाब और जल तथा वायु के साथ तीव्र क्रिया का न होना। परंतु इस प्रकार के शीतलकों जैसे कि लैड बिस्मथ गलित लवण में घुलित आक्सीजन की मात्रा एक सीमा से अधिक नहीं होनी चाहिए, अन्यथा लैड और विस्मथ अपने आक्साइड में परिवर्तित हो जायेंगे। जिससे तरल के प्रवाह में अवरोध उत्पन्न होगा तथा ऊष्मा विनिमायक (heat exchanger) की सतह पर इन आक्साइडों क निक्षेपण से शीतलन नलिकाओं में चोक उत्पन्न हो जाएगा। साथ ही इन पदार्थों में विलेय आक्सीजन की एक निश्चित सांद्रता आवश्यक भी होती हैं जो आक्साइड

की एक पतली परत बनाकर नलिकाओं को संक्षारण (corrosion) से सुरक्षा प्रदान करती हैं। कुछ ठोस विद्युत अपघट्टों (solod electrolytes) की आयनिक चालकता का उपयोग करते हुए उच्च ताप युक्त तरल धातु तंत्र में, विलेय आक्सीजन की मात्रा के आन-लाइन मापन हेतु विद्युत-रासायनिक सेल असेंम्बली का निर्माण किया जा सकता है। इस प्रकार के सेलों के निर्माण के लिए एंट्रिया स्थाई जिरकोनिया (Yttria Stabilized Zirconia, YSZ) आधारित पदार्थ अत्यधिक उपयोगी होते हैं।

भा. प. अ. केंद्र के रिएक्टर अभियांत्रिकी प्रभाग द्वारा लैड में विलेय आक्सीजन की मात्रा ज्ञात करने के लिए एक आक्सीजन संवदेक का विकास किया गया है। यह आक्सीजन संवेदक एक बंद शिरा वाली YSZ ट्यूब का बना है। इस ट्यूब को केंद्र के सिरामिक पदार्थ अनुभाग द्वारा निर्मित किया गया है। इस ट्यूब में प्रयोगशाला ग्रेड का Bi +Bio3 मिश्रण आंशिक रूप से भरा होता है, जो संवेदक के संदर्भ इलेक्ट्रोड (reference electrode) का कार्य करता है। एक मालिब्डनम राड (पात्र की दीवार और संदर्भ इलेक्ट्रोड के बीच विद्युत् संयोजन हेतु) तथा एक स्टेनलेस स्टील की परत वाला तापविद्युतयुग्म (thermocouple) (तापमान मापन हेतु) इस ट्यूब में भरे मिश्रण में डूबे रहते हैं। इस ट्यूब को उच्च ताप वाले टेफ्लान कैप और सिलिकान सीलन से सीलबंद कर दिया जाता है। गलित लैड मिश्रधातु जिसमें यह ट्यूब डूबी होती हैं, दूसरे इलेक्ट्रोड का कार्य करता है। इस प्रकार एक विद्युत रासायनिक सेल असेम्बली तैयार हो जाती है।

आक्सीजन संवेदक को परीक्षण पात्र में इस प्रकार से फिट किया जाता है कि यह आंशिक रूप से गलित धातु में डूबा रहे. एक उच्च प्रतिबाधा मिलीवोल्टमीटर (high impedance millivoltmeter) मालिब्डनम राड और परीक्षण पात्र की दीवार से जुड़ा रहता है. संदर्भ इलेक्ट्रोड और गलित धातु में आक्सीजन की सांद्रता में भिन्नता के कारण ट्यूब की दीवार पर विद्युत वाहक बल (electro motive force,EMF) उत्पन्न होता हैं, जिसे पात्र में लगे मिलीवोल्टमीटर द्वारा ज्ञात कर लिया जाता है। विकसित किये गए इस आक्सीजन संवेदक का उपयोग करते हुए गलित लैड धातु में आक्सीजन की सांद्रता मापने के लिए कई प्रयोग किये गए और प्राप्त परिणाम सैद्धांतिक अनुमानों के अनुरूप पाए गए हैं। इस प्रकार के आक्सीजन संवेदक न केवल गलित लवण आधारित नाभिकीय रिएक्टरों के लिए अतिउपयोगी साबित होंगे, बल्कि उन औद्योगिक प्रक्रियाओं के लिए भी उपयोगी होंगे जहां गलित धातु को आक्साइड में परिवर्तित होने से रोकने के लिए, घुलित आक्सीजन की मात्रा का पता लगाना वांछनीय होता है।

: प्रस्तुति : एस. के. पाठक
वैज्ञानिक अधिकारी, ईंधन पुनर्संसाधनप्रभाग
भा. प. अ. केंद्र, ट्राम्बे, मुंबई- 400085

अन्य विज्ञान समाचार

हरे कृत्रिम वृक्ष करेंगे तेज गति से कार्बनडायऑक्साइड का अवशोषण

अब हम सभी इस तथ्य से परिचित हैं कि पेड़-पौधे-वनस्पतियां हवा से कार्बनडायऑक्साइड गैस को अवशोषित कर वायु को दूषित होने से बचाती हैं और प्रकाश संश्लेषण की क्रिया में प्राणवायु ऑक्सीजन निकालकर वायु को शुद्ध रखती हैं। हम कल्पना भी नहीं कर सकते हैं कि यदि पादप

कार्बन डाइऑक्साइड को अपने अंदर न खींच लेते तो इस धरती पर जीवन रह पाता भी या नहीं।

वर्तमान में कार्बन डायऑक्साइड गैस का इतनी अधिक मात्रा में उत्सर्जन हो रहा है कि धरती का ताप बढ़ता जा रहा है और ग्लोबल वार्मिंग (वैश्विक तापन) की समस्या 'सुरसा' की भांति मुंह बाए खड़ी है। किंतु यह भी सच है कि वैज्ञानिक कार्बन डाइऑक्साइड गैस के उत्सर्जन को कम से कम करने और कार्बन डाइऑक्साइड गैस को अवशोषित करने के नवीकरणीय उपाय ढूंढ़ रहे हैं।

आमतौर से कृत्रिम वृक्ष की शोभा तब देखने में आती है जब क्रिसमस के त्यौहार के समय 'क्रिसमस ट्री' को सजाया जाता है। किंतु प्रयोगशाला में बने हरे कृत्रिम वृक्ष कार्बन डायऑक्साइड गैस को अवशोषित कर सकते हैं और वह भी नैसर्गिक वृक्षों की तुलना में अवशोषण गति 1000 गुना अधिक. यह नई खोज निश्चित रूप से चौंकाने वाली तो है ही, कार्बन डाइऑक्साइड गैस के प्रदूषण और 'ग्लोबल वार्मिंग' को कम करने का अभिनव प्रयास भी है।

एक सूचना के अनुसार क्लाउस लैकन जो भूगर्भ भौतिकी (जियोफिजिक्स) के प्रोफेसर हैं और वे 1998 से ही एक प्रोजेक्ट पर कार्य कर रहे थे। इस प्रोजेक्ट के तहत कृत्रिम हरे प्लास्टिक वृक्षों की सहायता से, वे जो कार्य कर रहे थे वह मोटरकारों के गैसोलीन और हवाई जहाजों के ईंधन के दहन से जो कार्बन डाइऑक्साइड गैस वायु में उत्सर्जित होती है उससे संबंधित है।

कृत्रिम वृक्षों को सूरज की रोशनी, पानी, स्तंभ और शाखाओं की आवश्यकता नहीं होती। ये बेलनाकार होते हैं और आकार में ऊंचे वृक्षों जैसे नहीं होते हैं। इनके कार्य करने के तरीके भी नैसर्गिक वृक्षों से भिन्न होते हैं।

लैकनर के अनुसार आकार में यह लचीला है, कार्बन डाइऑक्साइड गैस को अवशोषक या शोषी पर इकट्ठा करता है, गैस की सफाई करता है और दबाव डालता है, और तब गैस को बाहर निकालता है। यह प्रक्रिया लगभग वैसी ही है जैसे स्पंज पानी को सोख लेता है। रेजिन फिल्टर, जो ऊपर की ओर छोर पर लगे होते हैं, कार्बन डाइऑक्साइड को आस-पास की वायु से कैद कर लेते हैं। अनेक चरणों से गुजरते हुए कार्बन डाइऑक्साइड को तली में एकत्र कर देते हैं ये चरण नमी और दाब के होते हैं।

प्रत्येक कृत्रिम वृक्ष में प्रतिदिन एक टन कार्बन डाइऑक्साइड गैस को अवशोषित करने की क्षमता होती है। गैस की यह मात्रा लगभग 20 मोटरकारों से निकली गैस के बराबर होती है। लेकनर टसकान नामक शोध संस्था के सह-संस्थापक और अध्यक्ष हैं। 'टसकॉन' एरिजोना में स्थित है. और इस तकनीक पर काम करने वाली 'ग्लोबल रिसर्च टेक्नालॉजीज' नामक संस्था है। इस तकनीक के बहुत आशाये हैं, किंतु एक यूनिट के निर्माण में लगभग 30,000 (डॉलर) की लागत आती है इसलिए खर्च बहुत ज्यादा है।

इस प्रोजेक्ट पर लेकनर और उनका दल पूरी लगन से काम कर रहा है। इस संबंध में लेकनर ने ऊर्जा सचिव स्टीवेनचू से मिलकर विचार-विमर्श भी कर चुके हैं। लेकनर को आशा है कि अगले तीन वर्षों में प्रोजेक्ट का एक आदि प्रारूप यूनिट तैयार हो जाएगा। लेकनर पूरे जोश के साथ इस प्रोजेक्ट की सफलता की ओर अग्रसर है और आशा की जानी चाहिए कि निकट भविष्य में कृत्रिम वृक्ष तेजी से कार्बन डॉइऑक्साइड गैस का अवशोषण करके न केवल कार्बन डाइऑक्साइड गैस की विषाक्तता कम करेंगे वरन् वैश्विक तापन को किसी सीमा तक कम करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाएंगे।

पौधों में भी तंत्रिका तंत्र होता है

बात चौंकाने वाली हो सकती है, फिर भी सच है. पौधों में भी तांत्रिक तंत्र विद्यमान होता है। पौधे किसी सूचना को, जो प्रकाश में कूटलेखिक या कोडित रहता है, याद रख सकते हैं और प्रतिक्रिया भी प्रदर्शित कर सकते हैं और साथ ही साथ प्रकाश की गुणवत्ता और तीव्रता की सूचना को एक पत्ती से दूसरी पत्ती में संचारित भी कर सकते हैं। यह एक ऐसी क्रिया है जिसकी मानव की तांत्रिका तंत्र से असरदार रूप से समानता होती है।

ये 'वैद्युत-रासायनिक संकेत' कोशिकाओं द्वारा ले जाए जाते हैं जो पौधों के लिए तंत्रिका (नर्व) की भूमिका निभाते हैं।

पोलेंड के वासा यूनिवर्सिटी ऑफ लाइफ साइसेंज के

स्टानिस्ला कारपिंस्की के नेतृत्व में एक शोधदल ने पौधों की अनुक्रिया (रेस्पांस) का निरीक्षण करने के लिए प्रतिदीप्ति अनुक्रिया प्रतिबिंब (फ्लुओरेसेन्स रेस्पांस इमेजिंग) विधि का प्रयोग किया। शोधार्थियों के सम्मुख एक तथ्य यह उजागर हुआ कि एक पत्ती पर जो प्रकाश दृष्टिगोचर हुआ उसने पूरे पौधे की अनुक्रिया को दर्शाया।

पत्तियों में प्रकाश द्वारा उत्पन्न की गई रासायनिक क्रियाओं से लिए गए संकेत, अंधेरे में (प्रकाश के अभाव में) भी चलते रहे। इस तथ्य के प्रकटीकरण के पश्चात शोधकर्ता इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि पौधे ने उस सूचना को 'याद रखा' जो प्रकाश में कूटबद्ध थी। शोधकर्ता बताते हैं कि उन्होंने प्रकाश को पौधे के केवल निम्नतम भाग में देखा और उन्होंने पौधे के ऊपरी भाग में परिवर्तन को ध्यान से देखा।

कारपिंस्की और उनके शोध दल ने पता लगाया कि जब प्रकाश ने पत्ती की एक कोशिका में रासायनिक क्रिया प्रारंभ किया तो इसने ठोकर मारकर घटनाओं के सोपान का प्रारंभ किया और इसकी सूचना या इसका संकेत पौधे के शेष भागों को एक विशेष प्रकार की कोशिका के माध्यम से भेज दिया गया। इस विशेष प्रकार की कोशिका को 'बंडल शीथ सेल' कहते हैं।

इस प्रकार कारपिंस्की और उनके सहयोगी शोधकर्ताओं ने पौधों में तंत्रिका तंत्र के विद्यमान होने की खोज कर ली.

स्टेम कोशिकाओं से श्वासनली, कान,आंख की चिकित्सा

आज सारे संसार में स्टेम सेल शोध में इतनी तेजी से अनुसंधान हो रहे हैं, जिससे आशा जगती है कि निकट भविष्य में अनेकानेक रोगियों को रोगों से मुक्ति मिलेगी। चिकित्सा से संबंधित एक शोध पत्रिका 'लांसेट' के अनुसार स्पेन, इटली और इंग्लैंड के वैज्ञानिकों ने तो कमाल ही कर दिया है।

बार्सिलोना में रहनेवाली दो बच्चों की एक 30 वर्षीय मां क्लाडिया कैस्टिलो वर्षों से क्षयरोग (ट्यूबर कुलोसिस) से पीड़ित थी। उनकी क्षतिग्रस्त श्वासनली का प्रतिरोपण स्टेम सेल द्वारा किया गया। महिला के बाएं फेफड़े ने काम करना बंद कर दिया था। उन्हें बार-बार अस्पताल जाना पड़ता था। जिससे वह अपने बच्चों की देखभाल करने में भी असमर्थ थी। प्रारंभ में चिकित्सक इस निर्णय पर पहुंचे थे कि महिला का पूरा बायां फेफड़ा शल्यक्रिया द्वारा निकाल

दिया जाए। किंतु डॉ पाओलो मैकचिआरिनी जो बार्सिलोना के हास्पिटल के क्लिनिकल विभाग के अध्यक्ष थे, उन्होंने फेफड़े को निकालने के बजाय श्वासनली का स्टेम सेल प्रतिरोपित करने का सुझाव दिया। इस प्रत्यारोपण में महिला के शरीर द्वारा प्रत्यारोपित स्टेम सेल को अस्वीकार करने की आशंका भी नहीं थी. अंततः शल्यक्रिया जून (2008) में की गई थी और चार महीनों के बाद समाचार मिला कि महिला अपने सामान्य जीवन का आनंद ले रही हैं और बच्चों की देखभाल भी कर रही हैं।

वास्तव में इस शल्यक्रिया में किया यह गया था कि स्टेम कोशिकाएं (स्टेम सेल्स) महिला के अपने ही थे जिन्हें महिला की श्वासनली पर प्रत्यारोपित किया गया। इस कारण शरीर द्वारा अस्वीकार करने की संभावना नहीं थी। श्वासनली पुनः सामान्य रूप से अपना कार्य करने लगी।

दक्षिण कोरिया के ग्वांग-जु स्थित चौन्नम नेशनल यूनिवर्सिटी के डॉ सूजीयोंग जांग और उनके सहयोगियों के मानव अस्थिमज्जा (बोन मैरो) से प्राप्त स्टेम कोशिकाओं को ऐसी गिनी पिग्स में प्रत्यारोपित किया, जो अपनी सुनने की शक्ति खो चुकी थीं। पहले स्टेम कोशिकाओं को प्रयोगशाला में पेट्रीडिशों में उगाया गया और फिर गिनी पिगों के आंतरिक कान में प्रत्यारोपित किया गया। तीन महीने बाद गिनीपिगों के कान परीक्षण से पता चला कि गिनी पिगों में आंशिक रूप से सुनने की क्षमता वापस आ गई। इस प्रकार के शोधों से पुनर्जनक औषधि के क्षेत्र में निश्चित रूप से संभावनाओं के अनेक द्वारा खुलेंगे।

संयुक्त राज्य अमेरिका में मेढ़क (फ्राग) के भ्रूण से प्राप्त स्टेम कोशिकाओं को जब ऐसे मेढ़कों की आंखों में प्रत्यारोपित किया जो देख सकने की शक्ति खो चुके थे, ताकि उनमें देखने की क्षमता पुनः विकसित हो सके। स्टेम कोशिकाओं में नए अंगों के निर्माण की अपार संभावनाएं हैं, बस आवश्यकता है इस प्रकार के शोधों को जारी रखने की।

मोबाइल फोन का अधिक प्रयोग मस्तिष्क कैंसर को दावत

इन दिनों बातचीत के लिए मोबाइल फोन का प्रयोग निरंतर बढ़ता ही जा रहा है। बड़े-बूढ़े, स्त्री-पुरुष और यहां तक कि कम उम्र के लड़के-लड़कियों के बीच मोबाइल फोन की लोकप्रियता बढ़ती ही जा रही है।

रिक्शेवालों, तांगावालों, सब्जीवालों, दूकानदार आदि सभी धड़ल्ले से मोबाइल फोन का प्रयोग करते हैं। और तो और, घरों में काम करने वाली नौकरानियां भी मोबाइल फोन रखती हैं और यदि काम पर नहीं आना है तो मोबाइल से सूचित कर देती हैं। मोबाइल फोन अब हमारे जीवन का अविभाज्य अंग हो चुका है। इसके अभाव में जीवन कैसा हो जाएगा, हम कल्पना भी नहीं कर सकते हैं।

किंतु क्या आप जानते हैं कि मोबाइल फोन का अधिक प्रयोग कहर ढा सकता है?

प्रतिदिन लंबे समय तक, लगभग 30 मिनट या अधिक

देर तक मोबाइल फोन से बात करना मस्तिष्क कैंसर को दावत देना है। ऐसा मात्र अनुमान ही नहीं, वैज्ञानिक सच्चाई है।

उपरोक्त महत्वपूर्ण सूचना मई 2010 में 'विश्व स्वास्थ्य संगठन' की 'इंटरनेशनल जर्नल ऑफ इपिडेमियालोजी' नामक विश्वविख्यात शोध पत्रिका में प्रकाशित हुई है। सूचना के अनुसार मोबाइल फोन का अधिक प्रयोग करने वालों को 'ग्लियोमा ट्यूमर' हो जाने का खतरा बढ़ जाता है। काफी लंबे समय तक बात करने से खतरा और भी बढ़ जाता है। 'काल्स' की संख्या में वृद्धि से उतना खतरा नहीं है जितना कि एक 'काल्स' की अवधि को बढ़ाने से, विशेष रूप से तब जब सिर से केवल एक तरफ ही मोबाइल फोन रखकर बात की जाए। सन 2000-2004 के मध्य किये गए एक सर्वेक्षण, जो लगभग 13000 मोबाइल फोन प्रयोगकर्ताओं पर किया गया था, से पता चला कि अधिकांश मोबाइल फोन प्रयोगकर्ताओं में, 'मेनिनजियोमा' रोग हो जाता है। यह कैंसर आम है, किंतु अपेक्षाकृत अधिक घातक कैंसर का रूप है। एक सर्वेक्षण से खतरे में वृद्धि नहीं पाई गई। यह आमतौर से पाया जाने वाला एक सामान्य मृदु अर्बुद है।

इसलिए मोबाइल फोन का इस्तेमाल करने वालों को यह सलाह दी जाती है कि वे प्रतिदिन आधे घंटे से अधिक समय तक मोबाइल फोन का इस्तेमाल न करें। इस सलाह की उपेक्षा करने से खतरा बढ़ जाता है। इस अध्ययन में एक कमी थी और वह यह कि आजकल की तुलना में पहले के समय के मोबाइल फोन प्रयोगकर्ता इतनी अधिक बातें नहीं

करते थे। उस समय लोग अपने पूरे जीवन में 100 घंटे या एक महीने में 2 घंटे से अधिक 'काल'नहीं करते थे. यदि सबसे ज्यादा 10 फीसदी बात करनेवालों का उदाहरण लें तो वे भी एक दिन में आधे घंटे से अधिक समय तक बात नहीं करते थे। मोबाइल फोन के सभी प्रयोगकर्ता 30 वर्ष से कम आयु के थे और कोई भी प्रतिदिन अधिकतम केवल एक घंटे ही बात करता था।

डॉ क्रिस्टोफर वाइल्ड, निदेशक, 'विश्व स्वास्थ्य संगठन, सेल फोन अध्ययन केंद्र' कहते हैं - ' इंटरफोन डाटा के माध्यम से मस्तिष्क कैंसर का खतरा बढ़ जाने की पुष्टि तो नहीं होती है, फिर भी वर्तमान में 'काल टाइम' और मोबाइल फोन के प्रयोग में जो वृद्धि हुई है, विशेष रूप से युवावर्ग में, उसे देखते हुए कहा जा सकता है कि मोबाइल फोन के इस्तेमाल और मस्तिष्क कैंसर में कुछ संबंध अवश्य हैं। जो लोग मोबाइल फोन का बहुत ज्यादा प्रयोग करते हैं उन्हें प्रयोग न करने वालों को तुलना में मस्तिष्क कैंसर का अधिक खतरा रहता है, ऐसा अध्ययन से ज्ञात हुआ है।

वर्तमान में भारत में 391 मिलियम सेल फोन का इस्तेमाल करने वाले लोग हैं। सन 2010 के अंत तक सेल फोन प्रयोगकर्ताओं की संख्या बढ़कर 500 मिलियन हो जाने की आशंका है। स्वास्थ्य मंत्रालय (भारत सरकार) ने स्पष्ट कर दिया है और चेतावनी दी है 'लंबे समय तक सेलफोन का प्रयोग स्वास्थ्य को काफी क्षति पहुंचा सकता है।' भारत सरकार के स्वास्थ्य मंत्री श्री गुलाम नबी आजाद सत्य के कितने निकट हैं जब वे कहते हैं - 'ऐसे लोग जो सेलफोन का प्रयोग प्रतिदिन दो घंटे दो वर्षों तक लगातार करते हैं, उनमें से 30फीसदी लोग बहरेपन के शिकार हो जाते हैं.' अच्छा होगा यदि मोबाइल फोन प्रयोगकर्ता श्री गुलाम नबी आजाद की बात पर न केवल ध्यान दें वरन् अमल भी करें।

नेनोटेक्नोलॉजी - उज्ज्वल भविष्य की ओर

इन दिनों नैनो टेक्नौलॉजी की धूम है। अंग्रेजी में एक कहावत है - 'स्माल इज ब्यूटीफुल' नैनो का हिंदी अर्थ है सूक्ष्मातिसूक्ष्म. नैनोटेक्नौलॉजी आज प्रयोगशाला से निकल कर पुस्तकों, शोधपत्रों, पत्रिकाओं और यहां तक कि समाचार पत्रों की सुर्खियों में आ गई है। 'नैनोकार' के विषय में तो आप सभी जानते हैं। अब 'नेनोबाइसिकिल' बनाने की भी योजना है।

नैनोटेक्नालॉजी आण्विक स्तर पर क्रियात्मक तंत्रों की अभियांत्रिकी है। आमतौर से ऐसा समझा जाता है कि नैनोटेक्नालॉजी कोई नई तकनीक या नया विज्ञान है। किंतु वास्तविकता कुछ और ही है। यह पुरानी तकनीक है और इसका प्रयोग रोमन काल (रोम ईरा) से होता आ रहा है। नैनोटेक्नालॉजी की समसामयिक स्वाभाविक प्रवृत्ति को निर्माण के माध्मय से समझा जा सकता है। नैनोटेक्नालॉजी नैनोस्तर पर निर्माण को अहस्तांतरणीय बनाता है, जिसमें उपयोगी पदार्थों की प्रति व्यक्ति (परकैपिटा) खपत कम हो जाती है। इससे लागत में कमी आती है और आर्थिक लाभ प्राप्त करने में सहायता मिलती है। और तो और, नैनो अवस्था में पदार्थ अपने शुद्धतम रूप में रहता है। इस संबंध में अमेरिका के नार्थ कैरोलिना यूनिवर्सिटी के 'मैटीरियल साइसेंस एंड इंजीनियरिंग' विभाग के जे. नारायण के विचारों को उध्दृत करना समीचीन होगा। जे.नारायण का कहना है- 'नैनोटेक्नालॉजी में दोषरहित पदार्थों का निर्माण निहित है।'

नारायण के अनुसार इस क्षेत्र में सूचनाओं के आदान-प्रदान में सहयोग आज के समय की सबसे बड़ी आवश्यकता

है। वास्तविक निर्माण प्रक्रिया क्षेत्रों और भविष्य के प्रयोगों के विषय में विचार-विमर्श और सहयोग के अनेक अवसर सामने हैं। फ्रांस स्थित लिली यूनिवर्सिटी ऑफ साइंस एंड टेक्नालॉजी के प्रोफेसर एलेन कैप्पी जो फ्रांस के ही सी नैनो ग्रुप के चेअरमैन भी हैं, का कहना है 'सामाजिक रूप से प्रयुक्त होने के लिए नैनोटेक्नालॉजी को प्रयोगशालाओं की सीमाओं से आगे जाकर उद्योग और अनुसंधान एवं विकास के संसार में प्रवेश करना होगा। इस प्रकार की गतिविधियां शैक्षिक संस्थानों, नीति-निर्धारकों और उद्योगों के बीच आपसी सहयोग की आवश्यकता की ओर वैश्विक स्तर पर, इंगित करती हैं।'

अंसल इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नालॉजी के निर्देशक, एम.पी.सिंह बताते हैं कि किस प्रकार आपसी सहयोग नैनो विज्ञान और नैनोटेक्नालॉजी अनुसंधान में मददगार हो सकते हैं। एम.पी.सिंह कहते हैं - 'अनुसंधान के सहयोग से चुने हुए संस्थानों का एक केंद्र (न्यूक्लियस) बनाया जा सकता है।' यह केंद्र अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठियों, सम्मेलनों और कार्यशालाओं के माध्यम से इनके बीच पारस्परिक विद्वानोंचित अंतः क्रिया को सुगम कर सकेगा। नैनोटेक्नालॉजी ने सूचना प्रौद्योगिकी (इंफार्मेशन टेक्नालॉजी) पर अत्याधिक प्रभाव डाला है। और ऐसा नैनोटेक्नालॉजी के सर्वथा नए तरह के अर्थ चालकों (सेमीकण्डक्टर्स) और क्वांटम कम्प्यूटरों के निर्माण द्वारा किया है। नैनोटेक्नोलॉजी खाद्य-उद्योग में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इसके उपयोग में रोगों के निदान और उपचार, औषधि-वितरण, ऊर्जा-संरक्षण और पर्यावरण संरक्षण सम्मालित हैं।

नैनोटेक्नालॉजी से भविष्य में बड़ी आशाएं हैं. मूल्य प्रभावी प्रस्ताव को देखते हुए नैनोटेक्नालॉजी से प्रगतिशील देशों को काफी लाभ की संभावनाएं हैं। किंतु बहुत से प्रगतिशील देश उन्नत देशों की तुलना में विवेचनाओं और खोजों की दृष्टि से काफी पीछे हैं। ऐसी स्थिति में सर्वाधिक प्रभावी मार्ग होगा विकसित और विकासशील देशों के वैज्ञानिकों के बीच मानवीय संबंधों में प्रगाढ़ता होना। तेजस्वी युवा अनुसंधानकर्ताओं को अच्छी से अच्छी प्रयोगशालाओं की सुविधा उपलब्ध कराना भी उत्तम विचार है। अच्छी प्रयोगशालाओं में प्रशिक्षित विज्ञानी जब अपने-अपने देश में वापस जाएंगे तो वे अपने साथ अर्जित ज्ञान को भी ले जाएंगे। विज्ञानी कैप्पी बल देकर कहते हैं कि विकसित देशों को चाहिए कि वे विकासशील देशों से आने वाले युवा शोधार्थियों के लिए समुचित आर्थिक अनुदान की भी व्यवस्था करें ताकि विकासशील देशों के युवा शोधार्थियों को आर्थिक संकट का सामना न करना पड़े।

नैनोटेक्नालॉजी में जहां तक भारतीय शोधकर्ताओं की जरूरतों का प्रश्न है तो भारत सरकार ने नैनोसाइंस और नैनोटेक्नालॉजी के लिए 1000 करोड़ रुपयों के एक प्रस्ताव को स्वीकृति प्रदान कर दी है। इसमें किंचित भी संदेह नहीं कि भारत में प्रशिक्षित मानव शक्ति की मांग बढ़ती जा रही है। अच्छा होगा यदि नैनोटेक्नालॉजी में उद्योग से संबंति स्नातकोत्तर स्तर के प्रशिक्षण की व्यवस्था हो ताकि प्रशिक्षण प्राप्त करने के बाद युवा शोधार्थी किसी संबंधित उद्योग में सेवा के अवसर प्राप्त कर सके। कुछ शोध केंद्र नैनोटेक्नालॉजी में शोध को वरीयता देते हैं किंतु उद्योगों के साथ नैनोटेक्नालॉजी को जोड़कर इस क्षेत्र में कार्य करनेवालों को प्रोत्साहित करने की आवश्यकता है।

यहां एक सहज-सा प्रश्न उठता है कि भारत में प्रखर बुद्धिवाले युवाओं को इस ओर कैसे प्रोत्साहित किया जाए? सर्वप्रथम तो यह कि नैनोटेक्नालॉजी के लिए एक बड़ी राशि की व्यवस्था हो। दूसरा कदम यह होगा कि 'नेशनल साइंस टैलेंट सर्च स्कीम' के माध्यम से विद्यार्थियों को नैनोटेक्नालॉजी क्षेत्र की ओर आकर्षित किया जाए। और तीसरा यह कि 12वीं कक्षा उत्तीर्ण विद्यार्थी, जो नैनोटेक्नालॉजी में उच्च शिक्षा प्राप्त करने के इच्छुक हों, उनके लिए विशेष आर्थिक सहायता की व्यवस्था हो। नैनो टेक्नालॉजी के क्षेत्र में अपना कैरियर बनाने के लिए विद्यार्थियों को विज्ञान अथवा इंजीनियरिंग में स्नातक डिग्री अथवा नैनोटेक की एम.एस.सी., पी.एच.डी. की संयुक्त उपाधि अथवा एम.एस.सी. एम टेक की संयुक्त उपाधि की आवश्यकता होगी। और प्रत्यक्षतः इस प्रकार के अध्ययन के लिए एक जिज्ञासु वैज्ञानिक मनोवृत्ति और शोध एवं अनुसंधान की गहरी अभिरुचि वाले युवाओं की आवश्यकता है।

यदि हम भारतवासी अपनी युवा शक्ति को पहचान कर, उन्हें प्रोत्साहन देकर इस ओर उन्मुख कर सकें तो निःसंदेह नैनाटेक्नालॉजी के माध्मय से हम विकसित भारत का निर्माण कर सकेंगे.

- प्रेमचंद्र श्रीवास्तव -
पूर्व संपादक 'विज्ञान' महर्षि दयानंद मार्ग
इलाहाबाद - 211002

विज्ञान विनोद

लतीफे ....पेट्रोलियम के !!

- डॉ.देवकी नंदन -
पता : 2205, न्यू जय भारत सोसायटी, प्लॉट नं.5, सेक्टर-4, द्वारका, नई दिल्ली-110075

टीचर : बच्चों, आसमान की बिजली और नैचुरल गैस से बनी बिजली में क्या फर्क होता है, बताओं तो?
एक छात्र : मैडम, आसमान की बिजली का बिल नहीं भरना पड़ता !

☺☺

तनय : यार अनय, विज्ञान ने बहुत तरक्की कर ली हैं, है न ?
अनय : मामला क्या है''
तनय : ऊपर देखो! पेट्रोल से दौड़ता ये जेट विमान धुएं की पूँछ छोड़ता कैसा सरपट तेज उड़ रहा है, है न?
अनय : भाई, इसमें साईंस और तरक्की का सवाल ही नहीं है। अगर तुम्हारे पाजामें में आग लगी होती तो तुम भी ऐसे ही दौड़ते न?

☺☺

इंजीनियर (डींग हाँकते हुए) : भतीजे, मेरी तो आदत है कि जो काम करो, उसी में डूब जाओ, तभी कामयाब पेट्रोलियम इंजीनियर हूँ ।
भतीजा : तो चाचा, पेट्रोलियम का कुआँ खोदना कब शुरू कर रहे हो?

☺☺

सेल्समैन (खरीदार से) : मैडम, यह है हमारा नया अनोखा कुकिंग रेंज, इसे बस एल.पी.जी.सिलिंडर से जोड़ों तो समझो किचिन का आधा काम हो गया, बेशक !
खरीदार महिला : अच्छा ? तो फिर हमारे घर दो कुकिंग रेंज भिजवा दीजिए ।

☺☺

विज्ञान शिक्षक : बच्चों, अगर मैं पाँच रुपये का यह सिक्का पेट्रोल और डीजल में डालूं तो यह किसमें घुलेगा?
तनय : किसी में भी नहीं सर !
विज्ञान शिक्षक : शाबाश, अब बताओं, कि क्यों नहीं घुलेगा?
तनय : सर, अगर घुलता तो आप डालेंगे ही नहीं!
पेट्रोलियम इंजीनियर (छोटे बेटे से) : मुन्ना, अगर हमारे पास दो गैस सिलिंडर है और हमारा पड़ोसी भी हमें अपने दो सिलिंडर दे दो तो हमारे पास कितने सिलिंडर हो जाएंगे?
मुन्ना : पता नहीं डैडी !
इंजीनियर : क्यों, टीचर मैथ्स नहीं सिखाती ?
मुन्ना : टीचर ऐप्पल वाला मैथ्स सिखाती हैं, सिलिंडर वाला नहीं !

☺☺

पेट्रोलियम संस्थान के तीन वैज्ञानिक समुद्र में एक रिंग पर बैठे कुछ अध्ययन कर रहे थे कि अचानक इनमें एक भौतिकविद और एक जीवविज्ञानी समुद्र में गिरे और डूबे मरे. बचे रसायनविज्ञानों ने इस घटना को अपनी नोटबुक में इस प्रकार दर्ज किया - 'ऐसा लगता है कि सागर के लवणीय जल में भौतिकविद और जीवविज्ञानी दोनों ही अत्यंत घुलनशील हैं. भौतिकविद ने अपनी भौतिक देह व जीवनविज्ञानी में अपने जीव का त्याग कर रसायनशास्त्र के सामने एक नया अदभुत रहस्य खोल दिया है!'

☺☺

टीचर : बच्चों, बताओं कि बिजली न हो तो हमारा जीवन कैसा होगा?
तनय : सर, बिल्कुल बेकार हो जाएगा ।
टीचर : शाबाश ! अब बताओ कि कैसे
तनय : सर, तब हमें पैराफीन वैक्स वाली मोमबत्ती जलाकर टीवी देखना पड़ेगा, हैं न?

☺☺

पोता (दादी से) : दादी, अब तुम्हें कैसे समझाऊं? मैं पेट्रोलियम गैस वाले बिजलीघर में काम करता हूं. इसकी भट्ठी इसी गैस से चलती हैं!
दादी : बो का हमार घर बारी कोला भट्ठी से जादा गरम होते हैं?
पोता : हाँ, दादी! हमारी भट्ठी तो बहुत बहुत गरम होती है.
दादी : ठीक हैं, आज शाम को एक पिट्रोली भट्ठी लेता अइओ, जा कोला भट्ठी पे बैंगन ठीक से नाय भुनतो !

☺☺

तीन मशहूर क्रिकेटरों की पत्नियों की डींगे
पत्नी 1- मेरे पति ने एक बार ऐसा ऊंचा और तगड़ा शॉट मारा कि कई कबूतर मर गए।
पत्नी 2 - और मेरे पति ने तो ऐसा करारा शॉट मारा कि एक हेलीकॉप्टर में बैठे मंत्री को जा लगा था...।
पत्नी 3 - अरे, मेरे पति का जबर्दस्त शॉट तो अपोलो 13 के पेट्रोल टैंक में जा लगा था....इसी कारण वो चंद्रमिशन फेल हो गया !!

ज्ञान विज्ञान की रोमांचक क्विज.....

नंबर बताओ, नंबर पाओ

- डॉ.देवकी नंदन -

पता - 2205, न्यू जय भारत सोसायटी, प्लॉट नं.5, सेक्टर-4, द्वारका, नई दिल्ली - 110075

पाठक मित्रों, संख्याओं (Numbers) से हमारा नाता बहुत पुराना है। 'शून्य' संख्या की खोज से अपना देश आज भी विश्वभर में जाना जाता है, है न? वक्त बीतने के साथ इन संख्याओं से हमारे रिश्ते इस कदर मजबूत हो गए है कि संख्याएं आज हमारी जिंदगी का अहम और स्वाभाविक हिस्सा बन गई हैं। हम सिर्फ गणित, भौतिकी और इतिहास जैसे विषयों के जरिये ही नहीं, लोकांतरवासियों से संबंध स्थापित करने के लिए भी रोज इन संख्याओं से रूबरू हो रहे हैं। संख्याओं के जरिये हम सचिन तेंदुलकर की सेंचुरीज पर नजर रख रहे हैं तो स्टॉक एक्सचेंज के सेंसेक्स पर भी। पाठक मित्रों, अब देखना यह है कि संख्याओं की इस आधुनिक संस्कृति को आपने किस हद तक आत्मसात किया है.....क्योंकि आज हम आपके लिए पेश कर रहे हैं ज्ञान और विज्ञान की ऐसी रोमांचक क्विज जिसके उत्तर आपको संख्याओं में ही देने हैं।

इस क्विज में कुल 32 प्रश्न हैं, हर प्रश्न के तीन तीन उत्तर 'क' 'ख' और 'ग' विकल्पों में आपके सामने हैं। हर प्रश्न के सही जवाब के रूप में आपको इन तीन विकल्पों में से सही विकल्प वाली संख्या को चुनना है। अपने जवाबों का मिलान फिर आप क्विज के अंत में दिए गए सही सही जवाबों से करें और पता लगा लें कि असल में आपके कितने विकल्प वाकई बिल्कुल सही हैं। इस क्विज की रचना इस प्रकार की गई है कि इसे विद्यार्थी, गृहणी, साइंस ग्रैजुऐट तथा वैज्ञानिक सभी आनंदपूर्वक हल करें। मगर...जी हां हम उन्हीं गृहणियों व विद्यार्थियों को पास मानेंगे जो कम से कम 11 प्रश्नों का सही जवाब देंगे जबकि साइंस ग्रैजुऐट्स व वैज्ञानिकों के लिए कम से कम 16 प्रश्नों का सही जवाब देना जरूरी है। यदि आप पास मार्क्स से ज्यादा पाते हैं, तो सहर्ष हमारे अभिनंदन भी स्वीकारें। तो मित्रों, अब देर किस बात की...शुरू हो जाइए और क्विज को 20 मिनट में ही निपटा डालिए....हमारी शुभकामनाओं के साथ. आपका समय शुरू होता है अब !!

प्रश्न 1 : 'द बुक ऑफ' के मुताबिक नील आर्मस्ट्रांग ने ज्यों ही चंद्रमा पर अपना पहला कदम रखा, रिपोर्टरों ने उनके जूते का साइज खोजना शुरू कर दिया था. इस खोज से पता लगा कि नील के अमेरिकी जूते का साइज है....

(क) 9.5 (ख) 10.5 (ग) 13.0

प्रश्न 2 : तीन के तीन अंक हैं हमारे पास जिनके उपयोग से हमने नीचे बताई तीन संख्यायें तैयार की हैं. बताइए कि इनमें सबसे बड़ी संख्या कौन सी है?

(क) 333 (ख) 33^3 (ग) 3^{33}

प्रश्न 3 : लिवर का हेपेटाईटिस रोग कई किस्म का है जैसे कि हेपेटाईटिस A हेपेटाइटिस B वगैरह। अब बताइए कि आज की तारीख में हमें इस रोग की कुल कितनी किस्में पता हैं?

(क) 5 (ख) 7 (ग) 8

प्रश्न 4 : भवानी प्रसाद मिश्र लिखित पुस्तक 'हिंदी की शब्द संपदा' के अनुसार हिंदी भाषा में वेग, ताप, दिशा, मौसम, आर्द्रता आदि को ध्यान में रख कर हवा को पवन, समीर, बयार, पुरवाई, अंधड़, चक्रवात, लू जैसे अनेक नामों से पुकारा जाता है। क्या आप बता सकते हैं कि इस पुस्तक में श्री मिश्र ने हवा के करीब कितने नाम बताए-गिनाए हैं?

(क) 50 (ख) 40 (ग) 100

प्रश्न 5 : विज्ञान के अनुसार शिशु को स्नान कराने के लिए पानी का सही तापमान फैहरनहाईट (Fahrenheit) पैमाने पर जितना डिग्री होना चाहिए....

(क) 90 (ख) 100 (ग) 110

प्रश्न 6 : न्यूयॉर्क बंदरगाह में बड़ी 'स्टैच्यू ऑफ लिबर्टी' को विश्व के आश्चर्यों में शुमार माना जाता है। आज लोगों

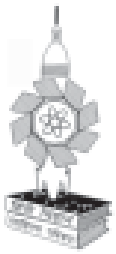

को यह भी पता है कि इस विशाल मूर्ति को तांबे (Copper) के टुकड़ों से निर्मित किया गया है क्योंकि इसका नीला हरा रंग बताता है कि यह तांबे के ऑक्साईड का रंग है। अब हमारा सरल सा प्रश्न यह है कि मैत्री के तौर पर फ्रांस द्वारा अमेरिका को भेंट की गई यह स्टैच्यू तांबे के कुल कितने टुकड़ों से निर्मित की गई है?

(क) 200 (ख) 300 (ग) 400

प्रश्न 7 : चीन देश आज रेयर अर्थ्स धातुओं (rare earths) का सबसे बड़ा निर्यातक है। अब बताइए कि आज की तारीख में विश्व को चीन द्वारा निर्यात किए जाने वाले रेयर अर्थ्स का प्रतिशत कुल कितना है?

(क) 47 (ख) 77 (ग) 97

प्रश्न 8 : पृथ्वी पर 5 महासागर हैं जिनमें सबसे गहरा है प्रशांत महासागर, और इस महासागर का सबसे गहरा स्थल है मरियाना ट्रेंच (Mariana Trench)। सागरतल से इस ट्रेंच की मापी गहराई किलोमीटरों में कितनी है?

(क) 7 (ख) 11 (ग) 15

प्रश्न 9 : सन् २००७ में कलकत्ता विश्वविद्यालय, मुंबई विश्वविद्यालय, इन तीनों ने अपनी स्थापना के कितने वर्ष पूरे कर लिए हैं?

(क) 100 वर्ष (ख) 150वर्ष (ग) 200वर्ष

प्रश्न 10 : ओलंपिक खेलों में भारत ने आज तक कुल कितने मेडल जीते हैं?

(क) 15 (ख) 19 (ग) 23

प्रश्न 11 : हम मनुष्यों के 32 स्थाई दांत होते हैं, हैं न? परंतु हमारे पालतू वयस्क डॉग (dog) के कितने दांत होते हैं?

(क) 22 (ख)32 (ग) 42

प्रश्न 12 : अगर रामचंद्र के दो लड़के हैं और हर लड़के की दो दो बहनें हैं तो बताइए कि रामचंद्र के कुल कितने बच्चे हैं?

(क) 4 (ख) 6 (ग) 7

प्रश्न 13 : नैशनल जियोग्राफिक बुक्स द्वारा इकट्ठी एवं प्रकाशित की गई नई जानकारी के मुताबिक विश्व में आज कितनी भाषाएं बोली जीत हैं?

(क) 2000 (ख) 5000 (ग) 7000

प्रश्न 14 : यह हमें पता है कि वायुमंडल में नमी के रूप में जल मौजूद है। हमारा सवाल यह है कि यह जल पृथ्वी की सतह के कितने किलोमीटर ऊपर तक मौजूद पाया गया हैं?

(क) 6 (ख) 12 (ग) 18

प्रश्न 15 : नोबल पुरस्कार (Nobel Prize) की शुरूआत किस वर्ष से हुई?

(क) 1901 (ख) 1911 (ग) 1921

प्रश्न 16 : कश खींचते वक्त सिगरेट के जलते सिरे का तापमान करीब कितना डिग्री सेल्सियस होता है?

(क) 200 (ख) 500 (ग) 700

प्रश्न 17 : वैज्ञानिक अनुमानों के मुताबिक गुफा मानव का औसत जीवनकाल कितने वर्षों का होता है?

(क) 20वर्ष (ख) 25वर्ष (ग) 30वर्ष

प्रश्न १८ : सन् 2010 में एक अमेरिकी बच्चा जोर्डन रोमेरो भी माउंट एवरेस्ट विजेता बन गया है। सबसे कम उम्र में एवरेस्ट फतह करनेवाले इस बच्चे की उम्र क्या?

(क) 13वर्ष (ख) 14वर्ष (ग) 15वर्ष

प्रश्न 19 : भूकंपों की तीव्रता मापने वाले रिक्टर पैमाने की रेंच (range) कितनी होती है?

(क) 0-12 (ख) 1-8 (ग) 1-12

प्रश्न 20 : शतरंज (chess) के बोर्ड पर कुल कितने वर्ग (Squares) बने मौजूद रहते हैं?

(क) 32 (ख) 64 (ग) 72

प्रश्न 21 : दस वर्षीय (सन् 2000-2010) एक महाविशाल वैज्ञानिक प्रोजेक्ट के तहत पृथ्वी पर लहराते सागरों-महासागरों में मौजूद कुल जलजीव प्रजातियों (aquatic species) की गणना अब कर ली गई है। गणना के अनुसार इन प्रजातियों की संख्या क्या हैं?

(क) 1,50,000 (ख) 2,50,00 (ग) 4,50,000

प्रश्न 22 : अगर डेढ़ मुर्गी डेढ़ दिन में डेढ़ अंडा देती हैं तो 15 मुर्गियां 3 दिन में कितने अंडे देंगी?

(क) 30 (ख) 45 (ग) 46

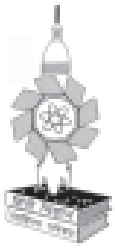

प्रश्न 23 : मनुष्य के मुकाबले कुत्ते यानी हमारे डॉग में सूंघने की शक्ति कई कई गुना ज्यादा होती हैं.....पर बताइए कि करीब कितने गुना?

(क) 100 (ख) 1000 (ग) 10,000

प्रश्न 24 : एक नैनोसेकंड दरअसल कितने सेकंड होता है?

(क) 10^{-3} (ख) 10^{-6} (ग) 10^{-6}

प्रश्न 25 : क्या आप जानते हैं कि दक्षिण कोरिया का स्वतंत्रता दिवस भी 15 अगस्त ही है, परंतु यह देश हमसे कुछ पहले आजाद हो गया था। तो क्या आप बता सकते हैं कि दक्षिण कोरिया किस वर्ष में आजाद हुआ था?

(क) 1940 (ख) 1943 (ग) 1945

प्रश्न 26 : अगर आपके पास मौजूद 20 ग्राम वाले सोने के सिक्के को पृथ्वी के केंद्र पर तोला जाए तो इसका वजन वहां कितने ग्राम होगा?

(क) 0 (ख) 10 (ग) 20

प्रश्न 27 : मुंबई के भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र में स्थापित मशहूर राष्ट्रीय संस्था - 'हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद' द्वारा इस 'वैज्ञानिक' पत्रिका का 40 वर्षों से लगातार प्रकाशन किया जा रहा है। इस पत्रिका के पाठक के तौर पर क्या आप बता सकते हैं कि आज उपरोक्त परिषद की स्थापना को स्वयं करीब कितने वर्ष हो रहे हैं?

(क) 40 (ख) 43 (ग) 49

प्रश्न 28 : पृथ्वी और सूर्य के बीच की औसत दूरी की एक एस्ट्रोनोमिकल यूनिट (Au) कहा जाता है। क्या आप बताएंगे कि किलोमीटरों में यह दूरी आखिर है कितनी?

(क) 50,000,000 (ख) 1,50,000,000
(ग) 2,50,000,000

प्रश्न 29 : अमेरिका, रूस, फ्रांस, ब्रिटेन तथा चीन के बाद अब भारत के पास भी स्वदेशी परमाणु पनडुब्बी 'अरिहंत' है। बताइए कि इसका नाभिकीय रियेक्टर कितने मेगावाट शक्ति का है?

(क) 80 (ख) 100 (ग) 130

प्रश्न 30 : हालांकि दुनिया में मात्रा के लिहाज से हमारे असम राज्य के चेरापूंजी स्थान पर ही वर्ष में सबसे अधिक बारिश होती है, मगर वर्ष के सबसे अधिक दिन बारिश होती है हवाई द्वीप के माउंट-वाई-आले-आले स्थान पर। अब बताइए कि माउंट-वाई-आले-आले में वर्ष के कितने औसत दिन बारिश होती है?

(क) 250 (ख) 300 (ग) 350

प्रश्न 31 : कैल्सियम व विटामिन - डी के कम उपभोग से हम भारतीयों की हड्डियां कमजोर हैं, इसी कारण पश्चिमी देशों के मुकाबले हमारे देश में हड्डियों के फ्रैक्चर ज्यादा आम हैं। अब हमारा प्रश्न यह है कि पश्चिमी लोगों के मुकाबले भारतीय जनों की हड्डियों का औसत घनत्व (density) कितने प्रतिशत कम पाया गया है?

(क) 5 (ख) 10 (ग)15

प्रश्न 32 : 16 अप्रैल से 13 मई 2009 के बीच 5 चरणों में 15वीं लोकसभा के लिए अपने देश में करोड़ों लोगों ने स्वतंत्र मतदान किया। इस सिलसिले में अब हमारा सवाल बस यही हैं कि यह चुनाव लोकसभा की कितनी सीटों के लिए लड़ा गया?

(क) 543 (ख) 559 (ग) 571

सही उत्तर इस प्रकार हैं

प्रश्न 1 : (क)
प्रश्न 2 : (ग)
प्रश्न 3 : (क)
प्रश्न 4 : (ग़)
प्रश्न 5 : (ख)
प्रश्न 6 : (ख)
प्रश्न 7 : (ग)
प्रश्न 8 : (ख)
प्रश्न 9 : (ख)
प्रश्न 10 : (ख)
प्रश्न 11: (ग)
प्रश्न 12 : (क)
प्रश्न 13 : (ग)
प्रश्न 14 : (ख)
प्रश्न 15 : (क)
प्रश्न 16 : (ग)
प्रश्न 17 : (ग)
प्रश्न 18 : (क)
प्रश्न 19 : (ग)
प्रश्न 20 : (ख)
प्रश्न 21 : (ख)
प्रश्न 22 : (क)
प्रश्न 23 : (ग)
प्रश्न 24 : (ग)
प्रश्न 25 : (ग)
प्रश्न 26 : (क)
प्रश्न 27 : (ख)
प्रश्न 28 : (ख)
प्रश्न 29 : (क)
प्रश्न 30 : (ग)
प्रश्न 31 : (ग)
प्रश्न 32 : (क)

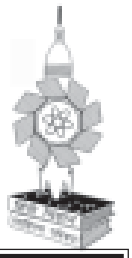

रचनाएं आमंत्रित

'वैज्ञानिक' हेतु लेख भेजते समय कृपया निम्न बातें ध्यान में रखें :

- लेख का विषय नया हो जो पाठकों में अधिक ज्ञान प्राप्त करने की जिज्ञासा बढ़ाये
- लेख मौलिक, अप्रकाशित तथा पठनीय हो, साथ ही साथ भाषा सरल, बोधगम्य और रूचकर हो।
- नव लेखन को प्रोत्साहित करने के लिए युवा एवं नव लेखकों की रचनाओं पर विशेष ध्यान दिया जायेगा तथा उन्हें वरियता प्रदान की जायेगी।
- कृपया अनुवादित लेख न भेजें।
- लेख टंकित किया हुआ अथवा स्पष्ट हस्तलिपि में दोनों ओर पर्याप्त हाशिया छोड़ कर कागज के एक ओर ही लिखें।
- विषय वस्तु समझने के लिए यदि चित्र आवश्यक हों तो उन्हें अलग से सफेद कागज पर काली रोशनाई से खींच कर लेख के अंत में संलग्न कर दें।
- अस्वीकृत रचनाएं डाक-टिकट लगा लिफाफा संलग्न होने पर ही वापस की जायेंगी।
- पत्रिका को अधिकाधिक रूचिकर एवं उपयोगी बनाने के लिए आप सभी सुधी पाठकों के सुझावों का स्वागत है।
- पत्रिका में वैज्ञानिक विषयों पर लिखी गई पुस्तकों की समीक्षा हेतु पुस्तक की कम से कम एक प्रति अवश्य भेजी जानी चाहिये।

''रचनाएं भेजने का पता''

श्री जयप्रकाश त्रिपाठी,

पी.पी.,एफ.आर.डी.(F.R.D.), भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र,

मुंबई-400 085

E-mail : jptripathi@barc.gov.in

मनोगत

'वैज्ञानिक' मिला, प्रसन्नता हुई

मैं 'वैज्ञानिक' का लगभग 25 वर्ष पुराना आजीवन सदस्य हूं। पिछले कुछ वर्षों से पत्रिका आना बंद हो गयी थी। कल इसका 41-42 वां अंक पुनः पाकर अपार हर्ष हुआ। इसके लिए आप सभी को धन्यवाद!

वैज्ञानक के 42वें वर्ष में प्रवेश पर पूर्व के एवं वर्तमान के सभी संपादक मंडल के सदस्यों को साधुवाद। हिंदी भाषा में विज्ञान संबंधी लेखों को पढ़ने की चाहत रखने वाले लाखों हैं, फिर भी विज्ञान पत्रिकाएं भाषा की दुरूहता एवं सामयिक विषयों के अभाव में अपेक्षित स्थान नहीं ले पा रही हैं।

पत्रिका हेतु उचित प्रकाशन योग्य सामग्री का अभाव होने का आपने अपने संपादकीय में जो उल्लेख किया हैं, उससे मैं सहमत हूं। इस संबंध में कृपया मेरा एक सुझाव है कि अंग्रेजी सहित अन्य भाषाओं में प्रकाशित सामयिक एवं नूतन सामग्री के अनुवाद से स्तरीय सामग्री तो मिलेगी ही, साथ ही पत्रिका भी अधिक रोचक हो जायेगी।

दूसरा सुझाव और है कि हिंदी भाषी राज्यों के माध्यमिक एवं उच्च माध्यमिक विद्यालयों को निदेशालायों को इस पत्रिका की सदस्यता के बारे में विस्तृत सूचना पत्र भिजवाने से निश्चित रूप से अपेक्षित सदस्यता प्राप्त होगी, साथ ही पत्रिका के लेखक समूह में भी वृद्धि होगी।

डॉ.ए.एल.जैन, निदेशक, विजन स्कूल ऑफ मैनेजमेंट, उदयपुररोड, चितौड़गढ़ (राजस्थान)

'वैज्ञानिक' नहीं मिल रहा

मैं आप की प्रतिष्ठित एवं लोकप्रिय पत्रिका 'वैज्ञानिक' तथा हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद का आजीवन सदस्य हूं। वर्तमान में शेरे कश्मीर कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्व विद्यालय जम्मू में एसोसिएट प्रोफेसर के पद पर आसीन हूं। जब मैं 'वैज्ञानिक' का सदस्य बना उस समय मैं काशी हिंदू विश्व विद्यालय में शोध का छात्र था इसलिए मैं अपने स्थायी पता पर आपका सदस्य बना। आपकी 'वैज्ञानिक' पत्रिका हमारे पते पर प्राप्त नहीं भी हो रही है। परंतु बड़े दुःख के साथ कहना पड़ रहा है कि पहले आप हमें अपने विभिन्न जगहों के आयोजनों में आमंत्रित किया करते थे परंतु पटना (बिहार) के आयोजन के बाद से आपका कोई आमंत्रण हमें नहीं प्राप्त हुआ। आपका पटना (बिहार) का आयोजन हमको बहुत अच्छा लगा और आज भी मेरे मानष पटल पर आता अंकित है। मैं आपसे उम्मीद करता हूं कि आप जरूर मेरी शिकायत पर ध्यान देंगे और हमें अपने समय समय के आयोजनों में आमंत्रित करेंगें। आप मेरे स्थाई पता पर जो भी पत्र व्यवहार करेंगे हमें शीघ्र से शीघ्र प्राप्त हो जायेगा।

'वैज्ञानिक' का नियमित पाठक सदस्य होने के नाते 'वैज्ञानिक' से जुड़े सभी पदाधिकारियों एवं कार्यकर्ताओं का सादर अभिवादन एवं हार्दिक अभिनंदन।

सधन्यवाद

डॉ. वीरेंद्र कुमार सिंह, जम्मू
E-mail : virendra_singh16@ yahoo.com

रचनाकारों से विशेष निवेदन

कृपया प्रकाशनार्थ पांडुलिपि तैयार करते समय संपादन की सुविधा के लिए निम्नलिखित निर्देशों का पालन करें :

1) (क) विभिक्तियों को शब्दों से अलग लिखा जाये - उदाहरण - 'राम ने', 'मेज पर', 'लड़कों को'
(ख) सर्वनामों की सभी विभक्तियों को मिलाकर लिखा जाये -

उदाहरण - 'उसने'. 'मैंने', 'उनका', 'हमसे'

(ग) जिन सर्वनामों के अंत में 'ही' अथवा 'ई' लगा हो, उनकी विभक्तियों को अलग लिखा जाये -

2) पूर्वकालिक क्रियाओं के 'कर' को अलग लिखा जाये -

उदाहरण - ' जा कर', 'आ कर', अन्यथा 'कर' मिलाकर लिखें।

3) संयुक्त क्रियाओं में दोनों अंशों को अलग-अलग लिखा जाये -

उदाहरण - 'आ गया', 'चल पड़ा', 'हो सका'

4) जिन भूतकालिक कृदंत क्रियाओं अथवा विशेषणों का अंत 'या' से होता है, उनके स्त्रीलिंग और बहुवचन रूपों में 'य' का ही प्रयोग किया जाये - उदाहरण - 'गया, गयी, गये', 'नया, नयी, नये', 'आया, आयी, आये', 'लाया, लायी, लाये', 'पाया, पायी, पाये', 'खाया, खायी, खाये', 'किया, किये' आदि।

5) 'हुआ' जैसी जिन क्रियाओं के अंत में 'आ' है उनके स्त्रीलिंग 'हुई' व बहुवचन 'हुए' के अनुसार होना चाहिए।

6) 'लिये/लिए' : लिये को लिया का बहुवचन रूप मानें और 'लिए' को विभिक्ति चिन्ह।

'चाहिये/चाहिए' : 'चाहिए' ही लिखा जाये।

7) एसा/ऐसा'' : 'ऐसा' लिखा जाये ।

'दिखाई/दिखायी' : 'दिखाई' संज्ञा रूप मानें और 'दिखायी' भूतकालिक क्रिया (स्त्रीलिंग) । उदाहरण - ' सांप दिखाई पड़ा', 'मैंने उसे पुस्तक दिखायी' इसी प्रकार 'पढ़ाई' और 'पढ़ायी' में भी अंतर करें।

8) आदरार्थ आज्ञा रूपों में संभावनार्थक क्रियाओं में 'ए' ही लिखा जाये -

उदाहरण - 'आइए', 'खाइए', 'जाइए', 'समझिए, 'कीजिए' 'रखिए' आदि।

9) अनुस्वार और आनुनासिक ध्वनियां : 'संयुक्त व्यंजन' की अनुनासिक ध्वनि को 'अनुस्वार' के द्वारा दर्शाया जाना चाहिए -

वर्ग का प्रत्येक पंचम वर्ण यथा, इ.('क' वर्ग), ञ ('च' वर्ग), ण ('ट' वर्ग), म ('प' वर्ग) तथा न ('त' वर्ग) अनुनासिक ध्वनियां हैं।

अनुस्वार स्थापन का नियम इस प्रकार है : जिस किसी अक्षर के आगे यदि उसी वर्ग की अनुनासिक ध्वनि है तो उसे अनुस्वार (बिंदी) से बदला जा सकता है :

उदाहरण - कंगन, अंक, व्यंजन, रंजन, ठंडा, डंडा, पंडित, कंपन, पंप, बंद, परंतु, किंतु, मृगांक, दंडित, संबंध, अंत आदि।

इस नियम का प्रयोग ध्यानपूर्वक करना चाहिए, अन्यथा अर्थ का अनर्थ भी हो सकता है। जन्म, मान्य, समन्वय, सम्मति आदि शब्द वैसे ही रहेंगे।

10) एकवचन से बहुवचन - 'या' से 'ये', 'ए' नहीं। जैसे, रूपया - रुपये, हंसिया-हंसिये (हंसिए आदारार्थ आज्ञा रूप होगा)

11) संस्कृत के जो शब्द हिंदी में तत्सम रूप से प्रचलित हैं, उनमें 'य' का व्यवहार उचित हैं. जैसे, अस्थायी, बाजपेयी,उत्तरदायी आदि। इन्हें अस्थाई, बाजपेयी, उत्तरदाई
लिखना न तो व्याकरण सम्मत है और न व्यावहारिक।

12)चंद्र-बिंदु का प्रयोग - छपाई की सुविधा के लिए चंद्र-बिंदु की जगह अनुस्वार का प्रयोग किया जाये। जैसे अंधा, आंख, अंगना, चांद, मां, पहुंचना, हां आदि।

13) संख्यां को अरैबिक (अंग्रेजी) में लिखा जाये - **1, 2,3, 4, 5, 6, 7, 8, 9, 10**

♦ 'वैज्ञानिक' में लेखकों द्वारा व्यक्त विचारों से संपादन मंडल का सहमत होना आवश्यक नहीं है. ♦ 'वैज्ञानिक' में प्रकाशित समस्त सामग्री के सर्वाधिकार हिं.वि.सा.परिषद के पास सुरक्षित हैं. ♦ 'वैज्ञानिक' एवं हिं.वि.सा.परिषद से संबंधित सभी विवादों का निर्णय मुंबई के न्यायालय में ही होगा. ♦ 'वैज्ञानिक' में प्रकाशित सामग्री का आप बिना अनुमति लिए उपयोग कर सकते हैं. परंतु इस बात का उल्लेख करना अनिवार्य होगा कि अमुक सामग्री *'वैज्ञानिक' से साभार.*

हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद, भा.प.अ.केंद्र, ट्रांबे, मुंबई-85 के लिए **डॉ.गोविंद प्रसाद कोठियाल** द्वारा संपादित एवं **श्री विपुल सेन** द्वारा निर्भय पथिक प्रकाशन (फोन : 24153784, 32201260) में मुद्रित व प्रकाशित ।

वैज्ञानिक (त्रैमासिक) R.No.:18862/70
दिल्ली, नयी दिल्ली, महाराष्ट्र, हिमाचल प्रदेश, राजस्थान व उ.प्र. के शिक्षा विभागों द्वारा स्कूलों व कॉलेजों के लिए स्वीकृत।

'हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद'
की
वैज्ञानिक मोनोग्राफ प्रकाशन योजना

परिषद ने विज्ञान के विभिन्न विषयों पर मोनो ग्राफ प्रकाशित करने की एक योजना बनायी है। इस कार्य के लिए उचित मानदेय, (120रु. प्रतिपृष्ठ लेखन एवं टंकण, चित्रों इत्यादि के लिए अलग) देने का प्रावधान है। परंतु प्रकाशित सभी पुस्तकों पर परिषद के सर्वाधिकार सुरक्षित रहेंगे। विषय-विशेषज्ञों से लगभग 5-6 पृष्ठों में पुस्तकों की विस्तृत रूप रेखाएं आमंत्रित हैं। जिसमें अध्याय, अनुच्छेद, संदर्भ सूची इत्यादि की जानकारी हो।

मोनोग्राफ मुख्य वैज्ञानिक विषयों यथा नाभिंकीय, ताप रसायन, जीव विज्ञान आदि पर न होकर उप-विषय, जैसे आइसोटोप, लेसर, रेडियोधर्मिता, अतिचालकता आदि पर हों। उदाहरणार्थ कुछ उप-विषयों के सुझाव इस प्रकार हैं :

- नाभिकीय ऊर्जा के शांतिमय उपयोग
- नाभिकीय रिएक्टर
- नाभिकीय ईंधन - यूरेनियम, प्लूटोनियम
- नाभिकीय पदार्थ - कवच, मंदक, परिरक्षक एवं अन्य
- आइसोटोप उत्पादन व उपयोग
- रेडियोसक्रिय विकिरण व उनके उपयोग
- नाभिकीय ऊर्जा एवं सुरक्षा
- एजिंग (काल प्रभाहन) एवं डिकमीशनिंग
- ईंधन पुनर्संसाधन
- अन्य संबद्ध कार्य

रूप रेखाओं का मूल्यांकन परिषद द्वारा गठित एक विशेष समिति करेगी। मूल्यांकन रिपोर्ट प्राप्त होने के बाद लेखक को परिषद के साथ लेखन कार्य संबंधी अनुबंध पर हस्ताक्षर करने होंगे। इस संबंध में अधिक जानकारी के लिए परिषद सचिव से इस पते पर संपर्क करें :

श्री जयप्रकाश त्रिपाठी, प्रभारी अधिकारी, न्यूक्लीयर मैटेरियल मैनेजमेंट, अनुभाग,
पी.पी.,एफ.आर.डी.(F.R.D.), भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र, मुंबई-400 085
E-mail : jptripathi@rediffmail.com
Tel. : 022-2559 1224